प्रकाशकः—
पुण्य सुवर्ण ज्ञान पीठ
बीकानेर

मुद्रक—
प्रतापसिंह लूणिया
जॉब प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर

पुस्तक प्राप्ति स्थान
१—सुखसागर सुवर्ण भण्डार
बीकानेर
२—श्री जिनदत्तसूरि मण्डल
दादावाड़ी, अजमेर
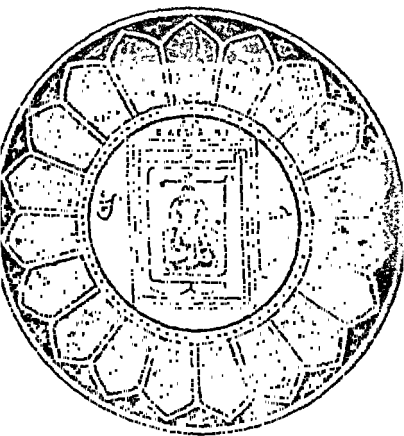
बीस स्थानक पट

बीस स्थानक तप विधि

(२० कथाएं, स्तुति, स्तवन आदि सहित)

●

मूल लेख

बीस स्थानक तप विधि (गुजराती) में वर्णित कथाओं का अनुवाद

●

संपादक

श्री चांदमल सीपाणी, 'साहित्य भूषण'

मंत्री–श्री जिनदत्तसूरि मण्डल दादावाड़ी, अजमेर

●

प्रकाशक

पुण्य सुवर्ण ज्ञानपीठ, बीकानेर

वीर संवत् २४८७ ★ ईस्वी सन् १९६१

वि. संवत् २०१८ सुख सागर सं. ७६

मुद्रक—
प्रतापसिंह लूणिया
जाब प्रिंटिंग प्रेस ब्रह्मपुरी, अजमेर

परम पूज्या विदुषी, शासन प्रभाविका, भारत कोकिला
श्री विचक्षणोजी महाराज सा.

जिनकी प्रेरणा से यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है जिसकी कि
हिंदी संसार में अत्यन्त आवश्यकता थी।

समर्पण

श्री आदरणीय परमपूज्या

विदुषी शासन प्रभाविका

श्री विचक्षणश्रीजी महाराज साहिब

के

कर कमलों में

सादर समर्पण

सहायक सूची

२५१) श्री सौभागमलजी मेहता, कोटा
२५१) श्री जवरीमलजो खजांची, नागोर
१०१) श्री उमरावकुंवर बाई भड़कतिया, अजमेर
१०१) श्री गणेशबाई मेहता, अजमेर
१०१) श्री ज्ञानचंदजो गोलेछा, जयपुर
१०१) श्री सरदारमलजी कास्टिया, जयपुर
५१) श्री उमरावमलजी विनयचंदजी खटाड़, जयपुर
५१) श्री मेहतावचंदजो बेराठी, जयपुर
५१) श्री पदमचंदजो काष्टिया, जयपुर
५१) श्री जैन श्वेताम्बर संघ, केकड़ी
५१) श्री जैन श्वेताम्बर सघ, जहाजपुर
५१) श्री राजमलजी सुराणा, जयपुर
३१) उदयपुर से
२५) श्री अमरचदजो नाहर, जयपुर
२५) श्री जड़ावचंदजी पगारिया, जावरा
२५) श्री कपूरचंदजी श्रीमाल, झूंझनू
२५) गुप्त जयपुर
२१) श्री चितामणजो बड़ेर, कोटा
१५) श्री समोरमलजो हेमराजजी, केकड़ी
१५) श्री विनोबाई, जयपुर
११) श्री शानूरामजी पंजावी, जयपुर
११) श्री संतोषचंदजी कोठारी
११) श्री कस्तूरीबाई पंजावो, जयपुर

दानवीर नररत्न
सेठ श्री सौभागमलजी मेहता, कोटा

सौ० पानबाई धर्मपत्नि
सेठ श्री सौभागमलजी मेहता, कोटा

श्री सोभागमल जी मेहता (संघवी)

कोटा राजस्थान की

जीवनी

इस खानदान का मूल निवास-स्थान सोजत (मारवाड़) का है। आप ओसवाल जाति के पावेचा (मेहता) गोत्रीय श्री जैन श्वेताम्बर मन्दिर मार्गी सज्जन हैं।

इस खानदान के पूर्वज सेठ श्री रामदास जी सं० १८६२ के लगभग सोजत से पाली (मारवाड़) पधारे और व्यापार कुशल होने के कारण प्रचुर धन कमाया। आपके दो पुत्र, सेठ हीराचन्द जी एवम् गुलाबचन्द जी थे। सेठ गुलाबचन्द जी संवत् १९३१ में कोटा पधारे और अफीम की दलाली आरम्भ की और संवत् १९४५ में आपने स्वतंत्र रूप से अफीम का व्यापार आरम्भ किया। व्यापार कुशलता के कारण शांघाई (चीन) तक स्वतन्त्र अफीम की पेटियां भेजने में सफल हुए और प्रचुर मात्रा में धन कमा कर अपनी प्रतिष्ठा कोटा में चल तथा अचल सम्पत्ति के साथ जमाई। इसी कमाये हुए धन से धार्मिक एवं सामाजिक उत्थान के कार्य भी किये। संवत् १९५० में कोटा के पाटनपोल के निकट स्थापित जैन मन्दिर का जीर्णोद्धार कराकर एक श्याम पत्थर की शिखर बन्द वेदी सोने की कोराई कराकर स्थापित की। इसके बाद संवत् १९६३ में अपनी हवेली में ही एक गृह देरासर की स्थापना की। जिसमें संगमरमर के समवशरण की रचना सुन्दर सोने की कोराई के साथ की गई और इसी भव्य वेदी में मूलनायक श्री आदीश्वर भगवान् की अष्टधातु की प्रतिमा की प्रतिष्ठा संवत् १९७३ में ज्येष्ठ सुदि द्वितीया को अष्टाह्निका महोत्सव के साथ कराई। आपने अपने जीवन में कई ज्ञानवर्धक जैन पुस्तकों को छपवाकर धार्मिक प्रचार के हेतु समाज में वितरित की। इसके साथ-साथ कई अठाई महोत्सव एवं

जैन तीर्थों की पूर्व तथा पश्चिम की यात्रायें की। आप अपनी सुशील धर्मपत्नी के साथ तपस्या करने में कभी पीछे नहीं रहे। कोटा आने के बाद आपके दो सुयोग्य पुत्र सोभागमल जी एवं जोरावरमल जी का जन्म हुआ।

श्री सोभागमल जी का जन्म संवत् १६५२ कार्तिक सुदी १२ को हुआ। संवत् १६८० तक अफीम तथा चांदी सोने वगैरह का व्यापार अपने पिताजी के साथ कुशलता पूर्वक किया। बाद में सेठ धिनोदीराम जी बालचन्द जी की फर्म से घनिष्ट सम्बन्ध होने के कारण उन्होंने श्री सोभागमल जी को बा अख्तयार मुनीम कोटा दूकान पर देख-रेख के लिये नियुक्त किया। आपने इस दुकान का कार्य बड़ी होशियारी और वजनदारी से संभाला। संवत् १६८० से लेकर २००२ तक आप कोटा दुकान में मुख्य मुनीम बने रहे। और इस समय के भीतर इस फर्म की तीन दूकानें पेट्रोल (बर्मा-शैल कम्पनी), कपड़ा (बिनोद मिल की एजेंसी) और कोटा जंकशन पर माचिस फैक्ट्री की नींव डाली। राज दरबार में मान बढ़ाया। इसके कारण सेठ लोगों का अभी तक भी अत्यन्त प्रेम एवं सद्भाव बना हुआ है।

अपने पिताजी के साथ संवत् १६७३ में गृह देरासर जी की जड़ लगाने के पश्चात् आप में धार्मिक रंग इतना गहरा चढ़ा कि आपने अपने जीवन में पिताजी का नाम उज्ज्वल रखते हुए समय-समय पर कई धार्मिक कार्य एवं तीर्थ यात्रायें करके स्वोपार्जित धन का सदुपयोग किया। तपस्या द्वारा बराबर धर्म का उत्थान करने में प्रस्तुत रहे। श्री सोभागमल जी के दो पुत्र श्री उमरावसिंह जी और चैनसिंह जी हुवे। ये भी कार्य-कुशल हैं और अपने पिता श्री के साथ धार्मिक कार्यों में काफी भाग लेते हैं।

संवत् १६६३ आषाढ़ वदि ६ को श्री गुलाबचन्द जी साहब के देहावसान के निमित्त अठाई महोत्सव किया तथा श्री संघ की सेवा भी

को। संवत् १६६४ में सपरिवार पूर्व देश की यात्रायें समेमत शिखर, पंचतीर्थी, कलकत्ता आदि की दो माह तक की। यथाशक्ति अपने धन का सदुपयोग किया। सं० १६६४ में अपना स्वतन्त्र व्यौपार करने के लिये फर्म गुलाब जनरल स्टोर की स्थापना की जो अभी तक सुचारु रूप से कार्य कर रही है।

संवत् २००० में अपनी धर्मपत्नि द्वारा श्री नवपद सिद्धचक्र तप आराधन करने के उपलक्ष में उजमणे के साथ अठाई महोत्सव संघ सेवा की।

संवत् २००१ में शामगढ़ के पास श्री पारासली तीर्थ में लगभग कोटा श्री संघ से २०० यात्रियों का संघ लेकर पधारे और इस तीर्थ में दादावाड़ी न होने से बनवाने का प्रस्ताव रक्खा और चन्दे में खुद ने अच्छी रकम भेंट करके अत्यन्त कोशिश के साथ संघ से चन्दा एकत्रित किया और दादावाड़ी का कार्य पूर्ण किया। एवं संवत् २००५ में दादा-साहब श्री जिनकुशल सूरी जी महाराज की प्रतिमा की बोली बोलकर खुद ने पधराई। संवत् २००३ में आपने उपधान तप कोटे में कराने का निश्चय किया। यह उपध्यान तप परमपूज्य आचार्यदेव श्री जिन-मणीसागर सूरि जी महाराज की अध्यक्षता में हुवा; और जिसका खर्च कोटा के (१) श्री सेठ गणेशदास जी हमीरमलजी जी (२) गुलाबचद जी सोभागमल जी (३) तेजमल जी उम्मेदमल जी नाहटा ने किया। इस उपधान तप में आपकी धर्मपत्नी ने भी उपाधान तप की आराधना की। सवत् २००५ में श्री सिद्धाचल जी की नवाणु यात्रा करने के लिये सपरिवार पधारे और यथाशक्ति हर प्रकार से लाभ प्राप्त किये।

संवत् २००६ में श्री शत्रुञ्जय तीर्थस्थ खरतर वसही में देहरी नं० १६ में श्री पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिमा अपनी तरफ से प्रतिष्ठा करके विराजमान कराई और पार्श्वनाथ प्रभु के पूरे अङ्गों की आंगी चांदी की भेंट की। संवत् २०१४ में चौथी बार श्री सम्मेत शिखर जी की यात्रा करने सपरिवार पधारे। जगह जगह यथाशक्ति धार्मिक कामों में धन

को प्रीति-भोज कराया गया। इस उद्यापन में ईश्वर भक्ति निमित्त शास्त्रानुसार श्री जिनबिम्ब चांदी सोने के आभूषण, मारबल पत्थर का महावीर स्वामी का पट्ट, बीसस्थानकजी का पट्ट व ज्ञानोपकरण, चारित्रोपकरण सम्बन्धी सब सामग्री एकत्रित करके भेंट की गई। इसके अतिरिक्त २१०० रुपया शुभ कार्य के निमित्त भेंट किया गया और इसी अवसर पर ही बीसस्थानक तप क्रिया विधि की २०० पुस्तकें छपवाकर वितरण की जा रही हैं।

आपको धार्मिक ज्ञान तो अपने पूज्य पिता श्री से जन्मकाल से ही मिला परन्तु सौभाग्य से आपकी अखन्ड सौभाग्यवती धर्मपत्नी श्री पानकँवर बाई ने बड़ी २ कई तपस्यायें और हर तरह के धार्मिक कार्यों में उन्नति करके अपने परिवार को पूर्ण धर्मिष्ठ बना दिया।

श्री पारासली तीर्थ में श्री आदीश्वर भगवान की प्रतिमा संवत् ६८८ के साल की प्रतिष्ठित है। श्यामगढ़ से ६ माईल पर यह तीर्थ है। इस तीर्थ की कई वर्षों से आप देख रेख कर रहे हैं, जिससे तीर्थ काफी उन्नति पर है।

उपरोक्त सब कार्यों में आपके साथ आपके दोनों सुपुत्र श्री उमरावसिंह जी व चैनसिंह जी ने तन मन से हर काम को सफल बनाने में सहयोग दिया है और आशा है भविष्य में भी इसी प्रकार धार्मिक कार्यों में रुचि रखते हुए अपने परिवार को धर्म की प्रेरणा देते रहेंगे।

सेठ गुलाबचन्द जी साहब के द्वितीय सुपुत्र श्री जोरावरमल जी मेहता का जन्म संवत् १९६४ कार्तिक वदि दूज को हुआ। आप भी प्रसन्नचित्त और धार्मिक कार्यों में पूरी लगन रखते हैं और सदा अपने बड़े भाई साहब का अनुगमन करते रहते हैं। आपके दो सुपुत्र बड़े श्री निर्मलकुमार जी और छोटे नेमिकुमार जी और तीन पुत्री हैं। और श्री उमरावसिंह जी के बड़ी पुत्री मोहन कुमारी व तीन पुत्र प्रतापसिंह, सरदारसिंह और बहादुरसिंह हैं। श्री चैनसिंह जी के पुत्री माणक कुमारी एवं आशा कुमारी हैं।

प्रस्तावना

यह तो सत्य है कि प्रत्येक मनुष्य का उद्देश्य किसी न किसी प्रकार से सर्व साधारण को सन्मार्ग दिखाकर उन्हें सुखी बनाने का होता है। उसी तरह इस पुस्तक का ध्येय भी यही है। अब प्रश्न यह है कि सुख किसे कहा जाय। क्या भरत चक्रवर्ती की तरह राजसुख को सुख कहा जाय? अथवा लक्ष्मी का स्वामी बन नाना प्रकार के भोग विलास को सुख कहा जाय? आदि। वास्तव में देखा जाय तो इनमें लेशमात्र भी सुख नहीं है क्योंकि ये नाशवान है तथा आत्मा के साथ सदा इनका संबन्ध नहीं रहने वाला है। फिर सुख किस तरह प्राप्त हो सकता है? परमोपकारी श्री तीर्थंकर देव ने अनंत अव्याबाध सुख प्राप्त करने के लिए दान, शील, तप और भावना चार प्रकार के धर्म का सेवन करने के लिए प्रतिपादित किया है। पूर्णरूप से इस चतुर्विध धर्म का सेवन करने वाले प्राणी को अनुक्रम से उपरोक्त सुख प्राप्त होता है।

इस पुस्तक में उपरोक्त चार प्रकार के धर्म के अन्तर्गत २० स्थानक के तप को प्रधान स्थान दिया गया है। इन भिन्न २ बीस स्थानक पद की आराधना से किस २ को क्या २ फल प्राप्त हुआ, तत्सम्बन्धी हरेक पद की आराधना करनेवाले महापुरुष की कथा का वर्णन किया गया है।

वर्तमान २४ तीर्थंकरों ने भी पूर्व भव में इन स्थानको की आराधना कर जिन नाम कर्म का उपार्जन किया था।

उसी तरह जो प्राणी बीस स्थानक तप की आराधना करेगा उसे भी जिनेश्वर पद को अद्‌भुत लक्ष्मी प्राप्त होगी।

आदरणीय पूज्या विदुषी शासन प्रभाविका श्री विचक्षण श्रीजी महाराज साहिबा का मैं बड़ा आभारी हूँ जिनकी प्रेरणा से मैंने 'श्री जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर' द्वारा प्रकाशित 'बीस स्थानक तप विधि' (गुजराती) में वर्णित कथाओं का यह छायानुवाद करने का प्रथम प्रयास किया है। अज्ञानता के कारण भाषा दोष, मतिदोष अथवा दृष्टि दोष से भूल होना स्वाभाविक है जिसके लिए क्षमा याचना करता हूँ तथा साथ में निवेदन है कि कृपया संशोधन करके पढ़ें।

चाँदमल सीपाणी,
अजमेर

अनुक्रमणिका

॥ ॐ अर्हं नमः ॥

श्री वीसस्थानक तप विधि

+++

शुभ दिन, वार, नक्षत्र व चन्द्रबल देख कर गुरु के पास विधिपूर्वक वीस स्थानक तप की ओली लेकर शुरू करना। एक ओली दो मास से छः मास पर्यन्त पूरी करे। यदि छः मास के अन्दर एक ओली पूरी न कर सके तो उसको फिर से दूसरी ओली शुरू करनी होगी क्योंकि वह गिनती में नहीं आती। एक ओली के वीस पद होते हैं, उन वीसों पदों में से वीस दिन में एक पद की आराधना करनी होती है। इस तरह कुल चार सौ दिन में ओली पूर्ण होती है। अगर ऐसा न हो सके तो वीस दिन में एक एक पद की आराधना कर के ओली पूर्ण करे। (कुल वीस दिन में)। शास्त्रानुसार तो यदि शक्ति हो तो अट्ठम (तेला) व्रत कर के वीस स्थानक तप का आराधन करे, क्रमशः वीस अट्ठम (तेला) कर लेने पर एक ओली पूरी होती है। इस प्रकार (४००) चार सौ अट्ठम के कर लेने पर वीस स्थानक तप का आराधन समाप्त होता है। यदि अट्ठम करके ओली का आराधन करने की शक्ति न हो तो, यथाशक्ति (छट्ठ) बेला, उपवास, अथवा आयंबिल या एकासणा कर के ओली की आराधना करे। तपस्या के दिन यथाशक्ति अष्ट प्रहरी या चोपहरी पोषध

करे। यदि ऐसा न बन सके तो आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, साधु, चारित्र, गौतम और तीर्थ, इन सात पदों के आराधन के समय अवश्य पौषध करे। पौषध करने को सामर्थ्य न हो तो देसावगासिकव्रत जरूर करे। व्रत करने वालों को विशेष ख्याल रखना चाहिए कि जन्म, मरणादिक के सूतक की तपस्याएँ ओली की संख्या में नहीं ली जाती है, अतः सूतक वगैरह का ध्यान रखे। स्त्रियों के लिये ऋतु-काल की तपस्या भी वर्जनीय है। तपस्या के दिन दो बार प्रतिक्रमण करे, तीन बार देव-वन्दन करे, जिन मन्दिर में जाकर दर्शन व पूजन करे, तप पद के संख्या के अनुसार स्वस्तिक करे, नैवेद्य चढ़ावें, तप की संख्या प्रमाण से प्रदक्षिणा दे, और खमासमणा दे, माला फेरे, कायोत्सर्ग करे, सावद्य व्यापार का यथाशक्ति त्याग करे, असत्य न बोले, जमीन पर सथारा कर सोवे, ब्रह्मचर्य पाले, पारणा के दिन देवदर्शन करे, सुगुरु को आहार देकर पारणा करे। बीस स्थानक तप पूर्ण होने पर विधिपूर्वक गुरु के पास तप पारणे की विधि करे, यथाशक्ति उजमणा करे तथा स्वामिवात्सल्य करे।

: इति तप विधि :-

प्रथम अरिहंत पद आराधन विधि

"ॐ नमो अरिहंताणं" इस पद की २० माला गिनें।

अरिहंत के १२ गुण होने से नीचे लिखे १२ खमासमण देवें। प्रत्येक खमासमण के पूर्व यह दोहा बोलें—

दोहा—

परम पंच-परमेष्ठिमां, परमेश्वर भगवान।
चार निक्षेपे ध्याइये, नमो नमो जिन भाव॥

१ अशोकवृक्ष प्रातिहार्य शोभिताय श्रीमदर्हते नमः

२ पंचवर्ण जानुदघ्न पुष्पप्रकर प्रातिहार्य शोभिताय श्रीमदर्हते नमः।

३ अतिमधुर द्रव्य माधुर्य्यतोऽपि मधूरतम दिव्यध्वनि प्रातिहार्य शोभिताय श्रीमदर्हते नमः

४ हेमरत्नजटित दण्डस्थितात्युज्वल चामरयुगल वींजितव्यंजनक्रियायुक्तसत्प्रातिहार्य शोभिताय श्रीमदर्हते नमः

५ सुवर्णदण्ड रत्नजटित सदा सहचारि सिंहासन सत्प्रातिहार्य शोभिताय श्रीमदर्हते नमः

६ तरुण तरणि तेजसोऽप्यतिभास्कर तेजोयुक्त भामण्डल सत्प्रातिहार्य शोभिताय श्रीमदर्हते नमः

श्री देवपाल

इस भारत क्षेत्र में लक्ष्मी से पूर्ण अचलपुर नाम का एक नगर था। वहां के लोग धनाढ्य, सुखी और दानी थे। वहा के राजा का नाम सिंहरथ था। जिसका यश सब जगह फैल रहा था। वह न्यायपूर्वक राज्य करता था और उन्होंने अपने शत्रुओं को वश में कर रखा था। कोई उसकी आज्ञा का उल्लंघन नही करता था। वह हाथी, घोड़े, रथ, पैदल आदि सब तरह की लक्ष्मी का स्वामी था। सर्व गुण सम्पन्न कनकमाला और शीलवती नामकी दो राणियां थी। राजा के एक सुलक्षणा एवम् अनुपम सौंदर्यशाली गुणवती नाम की पुत्री थी।

उसी नगर में साक्षात् कुबेर के समान अपार धनशाली जिनदत्त नाम का सेठ रहता था। राजा भी उसका बड़ा सम्मान करता था। वह सेठ सम्यग् दृष्टियों मे श्रेष्ठ, दुखी और अनाथों को आश्रय देने वाला, परोपकारी, दयालु आदि गुणों से विभूषित था। उसके घर में (क्षत्रिय जाति में उत्पन्न हुआ,) सर्व जीवों पर दया करने वाला, जैन धर्म को मानने वाला देवपाल नाम का नौकर था। वह सद्गुरु के सहवास से वीतराग धर्म के रहस्य को जानने वाला था। अहा ! सद्गुरु की कृपा से क्या नही मिलता ? सद्गुरु मिथ्यात्व का नाश कर अनेक भवों में उपार्जन किए क्लिष्ट

कर्मों का नाश करने वाले सम्यगदर्शन ज्ञान और चारित्र रूपी तीन रत्नों को प्राप्त कर भव भ्रमण रूपी चक्र से मुक्त करते हैं। ऐसे सद्गुरु की संगति के गुणों का यथार्थ वर्णन कौन कर सकता है ?

एक दिन आकाश में मेघ गर्जना कर रहे थे, जगह-जगह नदियों में पानी बड़े वेग से बह रहा था, ऐसे समय में देवपाल कम्बल ओढ़े, हाथ में लाठी लिए जिनदत्त सेठ की गायों को लेकर एक नदी के किनारे चराने लगा। इतने में जल के तेज बहाव के कारण नदी तट का एक तरफ का हिस्सा गिर पड़ा और उसमें से आदिश्वर भगवान युगादिदेव की मनोहर मूर्ति निकली। एकाएक देवपाल की दृष्टि उस मूर्ति को देखकर चिन्तामणी अथवा कल्पवृक्ष प्राप्त हुआ हो इस प्रकार हृदय में प्रसन्न होता हुआ सोचने लगा कि अहो ! मैं बड़ा भाग्यशाली हूँ कि तीन लोक के स्वामी के मुझे दर्शन हुए। मेरे सब अशुभ कर्मों का नाश होकर वास्तव में मेरा पुण्य उदय हुआ है। अब इस प्रभु की मूर्ति को पवित्र स्थान देखकर स्थापित करूं। इस प्रकार विचार कर पवित्र जगह देख नदी के किनारे पर एक पर्ण कुटि बनाई और उसमें युगादिदेव की प्रतिमा स्थापित कर यह नियम लिया कि 'जीवन पर्यन्त जब तक यहां प्रभु के दर्शन नही करूंगा तब तक भोजन नहीं करूंगा।' ऐसा नियम लेकर निरन्तर उस प्रतिमा के द्वारा प्रभु की वंदन से सेवा, पूजा, भक्ति करने लगा।

कारण से भगवान की भक्ति स्तवन किया तथा भगवान का ध्यान करता हुआ घर गया। जिनदत्त सेठ ने बहुत आदर पूर्वक क्षीर से पारणा कराया। उस समय नगर के बाहर उद्यान में दमसार मुनि ने निर्मल शुक्ल ध्यान के प्रभाव से घातिया कर्मों का क्षय कर लोकालोक को एक ही समय में प्रकाश करने वाला निर्मल केवलज्ञान प्राप्त किया। उनका देवताओं ने केवलज्ञान महोत्सव किया। जिस प्रकार मन्दराचल पर्वत पर सूर्य शोभायमान होता है उसी प्रकार सुवर्ण कमल पर आरूढ होकर केवली भगवान शोभित हुए। नगर में नगर निवासियो को सूचना मिलने पर सब केवली भगवान की वन्दना को चले। सिहरथ राजा भी परिवार और अपनी सम्पत्ति सहित केवली की पर्षदा मे आकर पांच अभिगम पूर्वक वन्दना व स्तुति कर उचित स्थान पर बैठ गया। उस समय दमसार केवली भगवान ससार रूप ताप से सतप्त हुए भव्यजनो को अमृत की वृष्टि के समान धर्म ना देने लगे।

हे भव्य प्राणियो ! यह संसार दु.खमय दुःख का भण्डार और असार है। प्राणियो का शरीर जल के बुदबुदे के समान क्षण मे उत्पन्न होकर विलय होता है। जो अतिशय श्रम से नाना प्रकार की सम्पदा को प्राप्त कर दूसरों पर हुक्म चलाता है वह भी जब निर्दयी यमराज के फन्दे में पड़ता है तब पूर्ण पश्चाताप करते हुए हाथ फैलाकर मृत्यु को प्राप्त होता है। उस समय महान् परिश्रम से प्राप्त की हुई सम्पदा को कोई अन्य ही भोगता है और उसे प्राप्त करने मे किए गये क्लिष्ट

कर्मों को तो उसे ही भोगने पड़ते हैं। संसार के सब सम्बंधियों का स्नेह भी केवल झूठा, प्रपंचमय एवम् स्वार्थमय है। यदि माता का स्नेह सत्य है ऐसा मान लिया जाय तो वह भी असत्य है, क्योंकि देखो चुल्लणी रानी ने अपने पुत्र ब्रह्मदत्त को अपने सुख में बाधारूप समझकर उसे मारने के लिये क्या नहीं किया! यदि पिता का स्नेह सत्य है ऐसा मान लिया जाय तो वह भी प्रपंचमात्र है, क्योंकि राज्यलक्ष्मी के लोभी कनककेतु ने अपने सब पुत्रों का अंगोपांग का छेदन कर उन्हें राज्य से अयोग्य बनाने का प्रयत्न किया। यदि पुत्र का स्नेह सत्य है ऐसा मान लें तो यह भी भ्रम ही है, क्योंकि कोणिक ने अपने पिता श्रेणिक को काठ के पींजरे में डालकर उसे क्या क्या दुःख नहीं दिये? इस प्रकार संसार के सब रिश्तेदारों का स्नेह उपाधि रूप और दुःख का कारण समझकर हे भव्य जीवों! आप धर्म में अपने चित्त को स्थिर करो। दस दृष्टान्त के समान दुर्लभ मनुष्यजन्म, आर्यक्षेत्र, उत्तमकुल, दीर्घआयु और जिन भाषित धर्म को पाकर प्रमाद से उसे क्यों व्यर्थ खोते हो? मनुष्यों को आधी आयु नींद में ही चली जाती है, बाकी में से आधी बचपन और युवावस्था में व्यतीत हो जाती है, अब बाकी रही हुई आयु बुढ़ापे में पूरी हो जाती है। इस प्रकार महान् पुण्य योग से प्राप्त हुए इस मनुष्य भव को लोग मोहवश होकर व्यर्थ में ही खो देते हैं। मृत्यु हो जाने पर जब नरक के दुःसह दुखों की वेदना सहन करनी पड़ती है तब यह जीव अत्यन्त पश्चाताप कर रुदन करता है और अन्त में अनन्त संसार चक्र में भ्रमण

अरे ! दो दिवस मात्र चारित्र पालने से सिहरथ राजा अनुपम देवता के सुख भोगने वाला हुआ। इसलिये जो दीर्घ-काल पर्यंन्त सम्यक प्रकार से निरतिचार संयम पालन करता है उसे क्या प्राप्त नहीं होता है? जो एक दिन भी मोह रहित, समभाव पूर्वक निरतिचार चारित्र का पालन करता है उसे कदाचित् मोक्ष न भी मिले, परन्तु देवलोक का सुख तो अवश्य मिलता है। इसीलिये कहा है कि—

प्रतिहन्तिक्षणार्द्धेन, साम्यमालंब्य कर्म तत् ॥
यन्न हन्यान्नरस्तीव्रतपसा जन्म कोटिभिः ॥१॥

अर्थः- 'जिन कर्मों को मनुष्य करोडों जन्म पर्यन्त किये हुए तप से भी दूर नहीं कर सकता, उन कर्मों को सिर्फ मन के साम्य अवलम्बन से आधे क्षण में दूर कर सकता है।'

अब देवपाल राजा हो गया परन्तु मंत्री वगैरह कोई उसकी आज्ञा को नहीं मानते थे। इससे देवपाल विचार करने लगा कि 'यदि मंत्री आदि नये बनाता हूं तो बिना कारण ये सब शत्रु बन जायंगे। अब क्या करना चाहिये ? सेठ जिनदत्त को बुलाकर उनकी सलाह लेना चाहिये। ऐसा विचार कर सेठ को बुलाया परन्तु सेठ भी अभिमान वश नहीं आया। तब देवपाल चिंतायुक्त होकर सरिता तट पर जहां युगादिदेव पर्ण कुटी में थे वहां जाकर भाव पूर्वक दर्शन कर स्तुति करने लगा—' हे प्रभु ! हे जगन्नाथ ! हे कृपानिधान ! आप जयवन्ता हो ! हे दीनेश ! आपने मुझे राज्य दिया परन्तु बिना घी के भोजन व्यर्थ है उसी प्रकार ऐश्वर्य और प्रताप

बिना राज्य भोगना भी बेकार है। इसलिये हे प्रभु ! जब आपने राज्य दिया है तो उसके साथ २ दसों दिशाओं में मेरी कीर्ति और प्रताप फैले और सब मेरी आज्ञानुसार काम करे ऐसा उपाय करें नहीं तो जिस प्रकार होली का राजा केवल हँसी के लिये होता है उसी तरह में भी प्रताप रहित वैसा ही गिना जाऊँगा।'

इस प्रकार देवपाल की स्तुति सुनकर चक्रेश्वरी प्रगट हुई और कहने लगी—हे राजा तू जरा भी दिल में खेद मत कर और मैं कहूँ वैसा कर जिससे सब तेरे आधीन हो जायेंगे। एक मिट्टी का हाथी बनाकर उस पर तू सवारी करना और देव प्रभाव से वह हाथी जीवित होकर सब जगह फिरेगा। यह देखकर सब लोग तेरी आज्ञा मानेंगे तथा अभिमान छोड़-कर नमस्कार करेंगे। परन्तु राज्य लक्ष्मी से उन्मत्त होकर कामधेनु के समान इच्छित फल देने वाले भगवान की सेवा मत छोड़ना। यह कहकर देवी अदृश्य हो गई।

देवपाल ने पुनः भगवान की हर्ष पूर्वक स्तुति कर राज महल में आकर कुम्हार को बुलाकर सुन्दर आकृति वाला ऐरावत हाथी के समान मिट्टी का हाथी तैयार कराया। उस पर अम्बावाड़ी लगाकर आरूढ होते ही देव प्रभाव से मिट्टी का हाथी मेघ समान गर्जना करता हुवा शहर के बाहर भगवान के दर्शन करने चला। यह आश्चर्य जनक घटना देखकर सब मन में डरने लगे और सोचने लगे कि वास्तव में इसका कोई देव सहायक है। यह सामान्य आदमी का कार्य नहीं है, इसे

अर्थ—द्रव्य स्तवन की आराधना करने वाला उत्कृष्ट बारहवें अच्युत देवलोक तक जाता है । भाव स्तवन से अन्तर्मुहूर्त में निर्वाण सुख को प्राप्त करता है। मेरु और सरसों में जितना अन्तर है उतना ही अन्तर द्रव्य स्तवन और भाव स्तवन में समझना चाहिये।

जिनेश्वर की पूजा भक्ति तीन प्रकार से बताई गई है वह इस प्रकार है। एक सात्त्विकी, दूसरी राजसी और तीसरी तामसी। वीतराग प्रभु के गुणों के विषय में अत्यन्त लीन; दुःसह उपसर्ग होने पर भी निश्चल भावयुक्त रहे तथा जिन चैत्यादि सम्बन्धी कार्य में आवश्यकतानुसार द्रव्य दे, महा-महोत्सव पूर्वक यथाशक्ति निरंतर निःस्पृहता से भक्ति करे वह प्रथम सात्त्विकी भक्ति समझना। इससे दोनों लोक में उत्तम सुख प्राप्त होते हैं।

इस लोक में सुख प्राप्त करने के लिए अथवा लोग को आकृष्ट करने के लिए या आजीविका के लिए जिनेश्वर की भक्ति करना राजसी भक्ति समझना।

शत्रु का विनाश करने के लिए, आपत्ति दूर करने के लिये और चित्त में अहंकार अथवा मत्सर धारण करके भगवान की भक्ति करना तामसी समझना। राजसी और तामसी भक्ति तो सब कोई सरलता से कर सकते हैं परन्तु सात्विकी भक्ति तो कोई महाभाग्यशाली व पुण्यशाली ही करते हैं; क्योंकि सात्विकी भक्ति सर्वोत्कृष्ट है, राजसी मध्यम है और तामसी जघन्य है। इसीलिए पंडित

लोग तो पिछली दो प्रकार की भक्ति नहीं करके सर्वोत्तम सात्विकी भक्ति का ही विशेष आदर करते हैं।

इसके अलावा जिनेश्वर की पांच तरह की पूजा भी बतलाई गई है। १—पुष्प वगैरह से सेवा करना २—जिन द्रव्य की वृद्धि करना ३—यात्रा करना ४—महोत्सव करना और ५—वीतराग की आज्ञा पालन करना। इसके सिवा और दो प्रकार से भक्ति होती है। एक आभोग से दूसरी अनाभोग से। जो जिनेश्वर के गुणों को सम्यक प्रकार से जानकर उनका यथार्थ वर्णन कर विधि पूर्वक भगवान की पूजा करना वह आभोग से द्रव्य स्तव भक्ति समझना। इससे अनुक्रम से चारित्र का लाभ होता है और इससे संसार समुद्र में भ्रमण कराने वाले अष्ट कर्म का नाश होकर अनन्त अव्याबाध मोक्ष की प्राप्ति होती है।

जिनेश्वर के गुणों से और पूजा विधि से अज्ञात परन्तु शुभ परिणामपूर्वक वीतराग की भक्ति करना अनाभोग द्रव्य स्तव भक्ति समझना।

जिन गुणों से अज्ञात हो परन्तु जिन बिम्ब देखकर जिनके हृदय मे अत्यन्त उल्लास पैदा होता है उससे भव्यजनों के अशुभ कर्मों का उच्छेद होकर भविष्य में भद्रकारी बोधि (समकित) प्राप्त होता है। जो जिनेश्वर के बिम्ब को देखकर द्वेष करते हैं वे प्राणी ससार मे अतिशय निविड़ कर्मबन्ध करते हैं। जिस तरह मृत्यु के समय किसी रोगी को अपथ्याहार की इच्छा होती है यह अशुभ को सूचित करने वाला

है उसी तरह कल्याणकारी जिन बिम्ब को देखकर जो प्र
अशुभ भाव धारण करता है, यह उसके अनन्त संसार भ्र
की सूचना देने वाला है। इसलिये अपना भला सोचनेवा
मनुष्य जरा भी जिन या जिन बिम्ब पर द्वेष नही करता है

अब आठ दृष्टि का स्वरूप कहता हूं सुनो

१–मित्रा—इस दृष्टिवाले को तृण की अग्नि के समान बहु
अल्पज्ञान होता है। अहिंसादि पाच यम की प्राप्ति, शुभ का
मे खेद रहित प्रवृत्ति, आचार्य की सेवा वगैरह क्रिया वाल
होता है और मिथ्यात्व की स्थिति तथा रस मंद होता है।

२–तारा–मित्रा से तारा दृष्टिवाले का मिथ्यात्व विशे
मद होता है इसलिये उसका ज्ञान छाणे की अग्नि को तरा
धीरे धीरे बढता है। वह सतोष, तप, ईश्वर प्रणिधान, अष्टां
योग की कथा में प्रीति और गुणीजनों का विनय आदि क्रिया
करनेवाला होता है।

३–बला–इस दृष्टि वाले का तारा दृष्टिवाले से मिथ्यात्व
विशेष मंद होता है इसलिये उसका ज्ञान लकड़ा की अग्नि के
समान होता है। वह तत्व श्रवण करने मे अत्यन्त प्रीतिवाला,
चपल परिणाम रहित होता है और योग की सब क्रिया
करता है।

४–दीप्ता—इस दृष्टिवाले का मिथ्यात्व मंदतम होता है
उसे सूक्ष्म ज्ञान नही होता परन्तु वह ससार पर विरक्तता,
गुरुभक्ति करनेवाला, पापवृत्ति से निवृत्ति पाने वाला और नय,
निक्षेप, प्रमाण तथा सप्तभंगी पूर्वक पदार्थों को जाननेवाला

होता है; उसे यथा प्रवृत्ति करणादि करण बिना सम्यकत्व की प्राप्ति नहीं होती । उसका ज्ञान प्रदीप की प्रभा के समान होता है।

५-थिरा-इस दृष्टिवाले का सम्यगदर्शन नित्य होता है। उसे ज्ञान रत्न की प्रभा के समान होता है। वह भ्रांति रहित सूक्ष्म ज्ञानयुक्त, पंचेन्द्रिय के विषय में अनासक्त होता है और संसार के सब भावों को उपाधिरूप समझकर तत्वज्ञान को ही सार रूप समझता है। वह सम्यकत्व में स्थिर चित्तवाला, रोग रहित, मधुरकंठ वाला, सुन्दर आकार वाला अनिष्ठुर तथा धर्मध्यान को पुष्ट करने वाला, मैत्री आदि भावना युक्त होता है।

६-कान्ता-इस दृष्टिवाले का ज्ञान तारे के प्रकाश के समान होता है इसलिये जिस तरह तारे का कभी अभाव नहीं होता, उसी तरह इस दृष्टि वाले को भी ज्ञान का अभाव नहीं होता। वह निरन्तर तत्व-ज्ञान की विचारणा, संसार में रहते हुए भी उस पर आसक्ति रहित, अर्हत प्रणित धर्म के विषय में निबिड़ रागवाला और आत्मज्ञान होने से संसार से डरता रहता है।

७-प्रभा-इस दृष्टिवाले का ज्ञान सूर्य की प्रभा के समान होता है। जैसे सूर्य के प्रकाश से अन्धकार का नाश होता है उसी तरह इस दृष्टिवाले से अज्ञान रूप अंधकार का नाश होता है। यह विशेषकर ध्यान में ही प्रवृत्त रहता है और बाह्य तथा अभ्यन्तर रोग रहित प्रवर ध्यान से उत्पन्न परमानन्द सुख का अनुभव करनेवाला होता है।

८—परा—इस दृष्टिवाले का ज्ञान चन्द्रमा के समान निर्मल शांत प्रकाश के समान होता है। निरतिचार पद में प्रवर्तमान, आत्मवीर्योल्लास से श्रेण्यारूढ़, हरेक क्रिया आत्म-गुण को पुष्ट करने वाली होती है उसे ही करता है, और अनुक्रम से अपूर्वकरणादि गुणस्थान पर पहुंच कर अन्त में केवलज्ञान प्राप्त कर अनेक भव्य जीवों का उपकार करता है।

इस प्रकार केवली भगवान की देशना सुनकर देवपाल श्रावक व्रत अंगीकार कर अपने महल में आया। उसके बाद बड़े उत्साह पूर्वक एक अत्यन्त मनोहर देवताओं के भवन से भी अधिक शोभायमान, जिसका ध्वजदण्ड और कलश बहुत उर्ध्व भाग में रहकर शोभा दे रहा है ऐसा जिन मंदिर उसने तैयार कराया। उसमें सुरधेनु और कल्पवृक्ष से भी अधिक सौख्यदाता ऐसे सुवर्णमय जिन बिम्ब की स्थापना की। अति महोत्सव पूर्वक केवली ने उसकी प्रतिष्ठा की। दूसरे भी अनेक जगह कैलाश समान देदीप्यमान चैत्य कराकर व प्रचुर द्रव्य व्यय कर, मन, वचन और काया से विधि पूर्वक प्रथम पद की आराधना निर्मल भाव से करने लगा। रत्न और माणिक्य के बहुमूल्य आभूषण कराकर विविध भक्ति से स्नात्रोत्सव कर अपना जन्म सफल करने लगा। स्वधर्मी बन्धुओं की मान पूर्वक भक्ति करता, अनेक तीर्थों की यात्रा करता, गुणवन्त साधु मुनिराजों को एषणीय भक्तपान का दान करता, जिनद्रव्य की वृद्धि करता तथा निरंतर जिनाज्ञा का पालन करता। राज्य कार्य छोड़ अत्यन्त भक्तिपूर्वक प्रथम स्थानक की

आराधना करते हुए उत्कृष्ट पुण्योपार्जन कर तीर्थंकर नाम कर्म का बंध किया।

'एक दिन नृपति देवपाल और रानी मनोरमा नगर बाहर क्रीड़ा करते हुए चले जा रहे थे कि इतने में मनोरमा ने दूर से एक मनुष्य को सिर पर लकड़ी की भारी लेकर आते हुए देखा। उसे देखते ही रानी मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़ी। राजा ने तुरन्त समयानुकूल शीतोपचार से सावधान कर पूछा—'रानी' ! यह अचानक तुमको क्या हुआ ?

रानी—"नाथ! उस लकड़हारे को देखकर मुझे जातिस्मरण ज्ञान हुआ जिससे मैं मूर्छित होगई। स्वामिन, क्रूर कर्म की लीला स्वरूप मेरे और उसके पूर्व भव का हाल सुनो। पूर्व भव में वह और मैं स्त्री पुरुष थे। हमारी स्थिति अत्यन्त करुणाजनक और दरिद्र थी, जिससे हम जगल से लकड़ी लाकर उसे बेचकर अपना निवाह करते थे। एक दिन जंगल में लकड़ी लेने हम दोनों जारहे थे कि इतने में गिरि नदी के तट पर कल्याणकारी जिन विम्ब को देखा। वहाँ जाकर पवित्र जल से स्नान कर हाथ में पुष्प लेकर हर्षपूर्वक भाव से प्रभु की भक्ति कर मैंने पापकर्म का नाश किया। उसके बाद मैंने अपने पति से कहा—नाथ ! अनेक भवों के क्लिष्ट कर्मों को नाश करने वाले श्री जिनश्वर की यह प्रतिमा है इनको भावपूर्वक प्रणाम कर अपना जीवन सफल कर ्ण्य फल का उपार्जन करा, और पापकर्म मल दूर करो'। इस तरह के मेरे हितकारी वचन सुनकर वे क्रोधाग्नि से प्रज्वलित होकर तीनलोक के नाथ के बिम्ब की

भर्त्सना करते हुये कहने लगे—अरे अभागिनी ! तू इ
इस पाषाण को नमस्कार कर तेरा कल्याण कर।
इस तरह वज्र प्रहार समान वाक्य कहकर आगे चले। वास्त
में जिनेश्वरदेव के धर्म के विषय में पूर्व पुण्य के उदय से ही
श्रद्धा होती है। इसके बाद समय पाकर मैं मरकर पूर्व
सुकृतोदय से राजा के यहाँ पुत्री रूप में उत्पन्न हुई और आप
जैसे महान् ऐश्वर्यवान् नृपति की पत्नी हुई; और वह विचारा
पुनः वैसी ही दरिद्रता में रहकर लकड़ी लाकर उदर निर्वाह
करता है। वास्तव में किये हुए कर्मों का फल भोगे बिना
कदापि छुटकारा नहीं होता।"

इस प्रकार रानी के मुंह से सारी बात सुनकर विस्मित
हो राजा ने उस लकड़हारे को बुलाकर रानी का पूर्व भव का
इसका सम्बन्ध सुनाया और कहा कि हे भाई ! तेने पूर्व भव
में सुपात्र दान भी नहीं दिया, जिनेश्वर की भक्ति भी भाव-
पूर्वक नहीं की, जिससे इस जन्म में भी तू दुखी और दरिद्री
है। अब यदि सुखी होना चाहता है तो श्री जिनेश्वर की भक्ति
कर और उनके बताये धर्म का आराधन कर जिससे इहलोक
और परलोक का उत्तम सुख प्राप्त हो। परन्तु अभव्य को
कभी धर्म पर श्रद्धा नहीं होती। राजा ने उसे बहुत समझाया।
परन्तु उसे राजा के वचन पर जरा भी विश्वास नहीं हुआ।
जिससे राजा ने उसे अयोग्य समझ कर छोड़ दिया और स्वयं
रानी सहित राजमहल को लौट गया।

इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर रानी के देवसेन

नामका पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ। युवावस्था प्राप्त होने पर उसका सुन्दर राजकुमारी के साथ ब्याह कर दिया। इसके बाद पुत्र को राज्य देकर राजा और राणी ने चन्द्रप्रभु गुरू के पास उल्लासपूर्वक चारित्र अंगीकार किया और निरतिचार संयम, आराधना व दुष्कर तप करता हुआ ग्यारह अंग व नवपूर्व का अध्ययन कर नित्य स्वाध्याय करता हुआ कर्मरज को दूर करने लगा। संयमाराधन करते हुए भी निरन्तर भाव युक्त अरिहंत पद की भक्ति भी करता था। इस प्रकार तीनों लोक में सब अकृत्रिम व कृत्रिम शाश्वत अशाश्वत जिनेश्वरों को भावपूर्वक वंदना कर व उनके गुणगान कर अपने कर्ममल दूर करने लगा। इसके सिवा जहां २ श्री जिनेश्वर के कल्याणक हुए वहां २ की यात्रा करता हुआ प्रथम पद की आराधना कर अंत समय में अनशन कर प्राणतकल्प में देव हुआ। मनोरमा भी निरतिचार संयम पाल कर कठिन तपस्या कर स्त्री वेद का उच्छेदकर उसी कल्प में देवांगना हुई और उसके साथ मित्र रूप में रहने लगी। राजा का जीव वहां से चवकर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थङ्कर पद प्राप्त करेगा। रानी का जीव भी वहां से चवकर उन्हीं तीर्थङ्कर के गणधर होकर मोक्ष प्राप्त करेगा।

द्वितीय सिद्ध पद आराधन विधि

"ॐ नमो सिद्धाणं" इस पद की २० माला गिने।

सिद्ध के ३१ गुण होने से नीचे लिखे ३१ खमासमण देवे। प्रत्येक खमासमण के पूर्व यह दोहा बोले

दोहा–

गुण अनंत निर्मल थया, सहज स्वरूप उजास।
अष्ट कर्म मल दाय करी, भये सिद्ध नमो तास॥

(खमासमण–)

१ मतिज्ञानावर्णि कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
२ श्रुतज्ञानावर्णि कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
३ अवधिज्ञानावर्णि कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
४ मनःपर्यवज्ञानावर्णि कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
५ केवलज्ञानावर्णि कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
६ निद्रादर्शनावर्णि कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
७ निद्रा निद्रावर्शनावर्णि कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
८ प्रचला दर्शनावर्णि कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
९ प्रचला प्रचलादर्शनावर्णिकर्म रहिताय सिद्धाय नमः
१० थोणद्धिदर्शनावर्णि कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
११ चक्षुदर्शनावर्णि कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
१२ अचक्षुदर्शनावर्णि कर्म रहिताय सिद्धाय नमः

१३ अवधि दर्शनावर्णि कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
१४ केवल दर्शनावर्णि कर्मरहिताय सिद्धाय नमः
१५ शातावेदनी कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
१६ अशातावेदनी कर्म रहिताय श्री सिद्धाय नमः
१७ दर्शन मोहनी कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
१८ चारित्र मोहनी कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
१९ नरकायुः कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
२० तिर्यगायुः कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
२१ मनुष्यायुः कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
२२ देवायुः कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
२३ शुभनाम कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
२४ अशुभनाम कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
२५ उच्चगोत्र कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
२६ नीचगोत्र कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
२७ दानान्तराय कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
२८ लाभान्तराय कर्म सिद्धाय नमः
२९ भोगान्तराय कर्म रहिताय सिद्धायः नमः
३० उपभोगान्तराय कर्म रहिताय सिद्धाय नमः
३१ वीर्यान्तराय कर्म रहिताय सिद्धाय नमः

उपरोक्त खमासमण देकर ३१ लोगस्स का कायोत्सर्ग करे।

है मनुष्य को अपने प्राण के सिवा अन्य कोई अधिक प्यारा नहीं है। जो एक जीव की रक्षा करता है वह त्रिभुवन की रक्षा करता है और जो एक जीव की हिंसा करता है वह त्रिभुवन की हिंसा करता है ऐसा समझना चाहिये। जीव चौदह प्रकार के है—सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, वेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरिन्द्रिय, सज्ञी पंचेन्द्रिय और असज्ञी पंचेन्द्रिय। सात पर्याप्त और अपर्याप्त मिलकर जीव के चौदह भेद होते हैं ऐसा जिनेश्वर भगवान ने कहा है। इन सबकी धर्मात्मा पुरुष रक्षा करते है। अपनी आत्मा और दूसरों की आत्मा में जरा भी फर्क नही समझते हैं। आत्मवत् सर्व भूतेषु—इस प्रकार सबको अपनी आत्मा के समान देखते है। दूसरे शास्त्रों में भी कहा है कि—

यत्र जीवः शिवस्तत्र, न भेदः शिवजीवयो।
न हिंस्यात्सर्वभूतानि, शिवभक्तिसमुत्सुक ॥ १ ॥

अर्थ—'जहाँ जीव है वहाँ शिव है। शिव और जीव में भेद नही है। इसलिये शिव की भक्ति करनेवाले को सर्व जीवो की हिंसा नही करनी चाहिये।

इस प्रकार जीवो पर दया करने से आत्मा निर्मल होती है और धीरे धीरे वह आत्मा जन्म, जरा आदि क्लेशों से मुक्त होकर अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्य को धारण करने वाला, शुद्ध चिदानन्दमय सर्वदा कर्मरहित होकर लोक के अग्र भाग वाले सिद्ध क्षेत्र मे जहाँ सब सिद्ध भगवान रहते हैं वहाँ पहुँचता है। उन सिद्ध जीवो के सुख का वर्णन करोड़ों मुख से

भी नहीं हो सकता है। सुर, असुर और मनुष्य सम्बन्धी जो जो उत्तम प्रकार के सुख हैं, उन सबको इकट्ठा किया जाय तब भी उस सुख की तुलना नहीं हो सकती अर्थात् उन सब सुखों से भी मोक्ष का सुख अनंतानंतगुण अधिक है। जिसने अमृत रस का पान किया हो उसे अन्य रस कैसे अच्छे लग सकते हैं? अर्थात् नहीं लगते। जिसने मोक्ष के अद्वितीय सुख को जान लिया है उसे अन्य देव मनुष्य सम्बन्धी पौद्गलिक सुख की इच्छा किस तरह हो सकती है। सभी सिद्धात्मा अमूर्त होने से परस्पर बाधा रहित मोक्ष स्थान में रहते हैं। सिद्ध के जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना ३३३ धनुष से थोड़ी अधिक है। मध्यम अवगाहना तीन हाथ से थोड़ी कम होती और जघन्य अवगाहना एक हाथ और आठ अंगुल होती है।

जैसे अमृत के एक बिन्दु मात्र से तीव्र विष की व्याधि नाश होती है, वैसे सिद्ध भगवान् के ध्यान से जीवों के दुष्कृत्यों की परंपरा नाश होती है और तीनों लोकों की पूज्य ऐसी उत्कृष्ट पदवी तत्काल मिलती है।"

इस प्रकार गुरू की देशना सुनकर मंत्री बोला—'हे प्रभु! सिद्ध की भक्ति से संसार का नाश करनेवाले श्रावक व्रत मुझे दीजिये। गुरू ने योग्य जानकर उसे व्रत दिये। व्रत लेकर गुरू को वंदना कर मंत्री राज्य का कार्य पूरा कर अपने नगर में आया। राजा को प्रणाम कर योग्य स्थान पर बैठ गया। तब राजा ने पूछा 'हे मंत्री! तुमने चंपापुरी में जो कोई अचरज देखा हो वह कहो।'

तब मंत्री ने कहा—'हे राजा ! उस नगरी के मंदिर देव भवन समान अतिशय मनोहर है जिनको देखकर मन की तृप्ति नहीं होती। जगह जगह दाता और भोक्ताओं के घर हैं। उस शहर के मध्य में तीनों लोक को आल्हाद पैदा करनेवाला अद्भुत शोभायमान श्री वासुपूज्य स्वामी का मंदिर है। उस मंदिर में सबके नेत्रों को मोहनेवाली, दिव्य आभूषणों से विभूषित वासुपूज्य स्वामी की मणिमय प्रतिमा है। मैंने मेरे पुण्योदय से उन जिनेश्वर की प्रतिमा के दर्शन कर अपने नेत्र सफल किये। भाव सहित भक्ति पूर्वक नमस्कार कर लौटते समय धर्म घोष मुनि मिले। उनको नमस्कार कर मैं बैठा। गुरू ने उपकार दृष्टि से सिद्ध का स्वरूप बताया। मैंने भी उसी प्रकार अंगीकार किया। इस प्रकार मंत्री के मुख से बात सुनकर राजा मन में विचारने लगा कि—अहो ! वे उपकारी मुनिराज यहां कब पधारेंगे और कब उनके दर्शनकर मैं अपने मन का मनोरथ पूर्ण करूंगा।' इतने में धर्मघोष मुनि साधु मंडली सहित उपवन में आ पहुँचे। राजा को उनके आने की सूचना मिलते ही प्रसन्न होकर मंत्री सहित गुरुदेव की वंदना करने गया। वहां जाकर विधि पूर्वक गुरू को वंदना कर यथोचित स्थान पर बैठ गया। इतने में गुरू महाराज सिद्ध का स्वरूप बताने लगे:—

'हे भव्यजीवों ! धर्म दो प्रकार का है एक श्रमण धर्म और दूसरा श्रावक धर्म। उस धर्म का सम्यक्त्व सहित आचरण करने से सिद्ध पद प्राप्त होता है। गुरू महाराज की

देशना सुनकर राजा बोला—हे करुणा समुद्र ! जो दृष्टि से अगोचर है, जिसकी रूपरेखा व काया अगोचर है, ऐसे सिद्ध भगवान की सेवा भक्ति किस प्रकार की जाय ? वह आप कृपा कर हमको बताइए। गुरु महाराज ने कहा 'हे राजन् ! जो सिद्ध स्थान में रहनेवाले निरंजन-निराकार, निःकषायी, जितदेह, शुद्धात्मा, सिद्ध स्वरूप का ध्यान करता है और उनकी मूर्ति की द्रव्य भाव से पूजा करता है वह प्राणी घातिया कर्मों का क्षय कर अनंतानंत सुख देनेवाली तीन लोक की सम्पदा प्राप्त करता है।' इस प्रकार स्वरूप सुन राजा विचारने लगा—अहो ! वह पुरुष धन्य हैं जो भव भ्रमण को दूर करने वाले जिन धर्म की आराधना करता है। मैं भी उसी को ग्रहण करूं। ऐसा विचार सिद्धपद के आराधना का व्रत ग्रहण कर अपने घर आया। पीछे निरंतर बहुत मानपूर्वक स्थिर चित्त से "नमो सिद्धाणं" पद से सिद्ध परमात्मा का ध्यान करता हुआ मंत्री सहित सम्मेद शिखर, शत्रुंजय, आदि सिद्धों के पवित्र स्थानों की यात्रा कर अपनी आत्मा को निर्मल करने लगा। अनुक्रम से निर्मल ध्यान से सिद्ध पद की आराधन कर मोक्ष सुख के निधान स्वरूप तीर्थंकर नाम कर्म बांधा। इस प्रकार दीर्घकाल तक राज्य ऋद्धि और सिद्ध पद की आराधना कर मंत्री सहित गुरुके पास चारित्र ग्रहण किया।

पीछे वह राजा अष्ट प्रवचन माता का सम्यक प्रकार से पालन करता, अप्रमत्तपणे दुष्कर तप और क्रिया कर कर्म क्लेशों का नाश करता हुआ ग्यारह अंग का अध्ययन कर

गुरु महाराज की आज्ञा लेकर सम्मेद शिखर की यात्रा के लिये गया। मार्ग में उसने यह अभिग्रह किया कि 'जब तक सिद्ध परमात्मा की मूर्ति के दर्शन न होंगे तब तक आहार नहीं लूंगा।' ऐसा दृढ़ अभिग्रह देख इन्द्र महाराज ने मुनि महाराज की सभा में प्रशंसा की। उसके वचन पर विश्वास न कर एक अग्निकुमार देव उस मुनि की परीक्षा के लिये वहां आकर अनेक प्रकार के विलिष्ट उपसर्ग करने लगा। तीव्र भूख और प्यास की ऐसी वेदना पैदा की कि सामान्य मनुष्य तो क्षण भर में प्राण रहित होजावे। ऐसी वेदना दो माह तक सहन करने से मुनि की काया अत्यन्त क्षीण होगई फिर भी उन्हें जरा भी क्रोध नहीं आया। तब देवता ने प्रगट होकर, सारी व्यथा दूर करदी और मुनि के चरणों में नमस्कार कर कहने लगा।—'हे महाभाग्य! हे करुणा समुद्र! समता सिंधु! मेरे सारे अपराध क्षमा करो। इन्द्र महाराज ने सभा में आपके अभिग्रह की प्रशंसा की उस पर मुझे विश्वास नहीं होने से मैंने आपके साथ यह कार्य किया है। अतः आप क्षमा करें।' ऐसा कह देव वापिस देवलोक म चला गया। राजर्षि मुनि ने दो मास तक उपसर्ग सहन कर समेद शिखर पर पहुँच कर सम्पूर्ण सिद्ध प्रतिमाओं को वन्दन कर पीछे पारणा किया। इस प्रकार निरतिचार चारित्र पालकर अन्त समय में अनशन कर मंत्री तथा राजर्षि दोनों अच्युत कल्प में देव हुए। वहां से चवकर राजा महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पदवी पाकर मोक्ष जावेंगे, और मंत्री वहाँ से चवकर उन्हीं तीर्थंकर के गणधर गणधर होकर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

तृतीय प्रवचन पद आराधन विधि

"ॐ नमो पवयणस्स" इस पद की २० माला गिने।

इस पद के २७ गुण होने से २७ खमासमण देवे। प्रत्येक खमासमण के पूर्व यह दोहा बोले।

दोहा

भावामय औषधि सम, प्रवचन अमृत वृष्टि।
त्रिभुवन जीवन सुखकरी, जय जय प्रवचन दृष्टि॥

१ सर्वतः प्राणातिपात विरताय श्री प्रवचनाय नमः
२ सर्वतो मृषावाद विरताय श्री प्रवचनाय नमः
३ सर्वतो अदत्तादान विरताय श्री प्रवचनाय नमः
४ सर्वतो मैथुन विरताय श्री प्रवचनाय नमः
५ सर्वतः परिग्रह विरताय श्री प्रवचनाय नमः
६ देशतः प्राणातिपात विरताय श्री प्रवचनाय नमः
७ देशतो मृषावाद विरताय श्री प्रवचनाय नमः
८ देशतो अदत्तादान विरताय श्री प्रवचनाय नमः
९ देशतो मैथुन विरताय श्री प्रवचनाय नमः
१० देशतः परिग्रह विरताय श्री प्रवचनाय नमः
११ दिशि परिमाणव्रत युक्ताय श्री प्रवचनाय नमः

१३ अनर्थदण्ड विरताय श्री प्रवचनाय नमः
१४ सामायिकव्रत युक्ताय श्री प्रवचनाय नमः
१५ देशावगासिक व्रत युक्ताय श्री प्रवचनाय नमः
१६ पोसहोपवासव्रत युक्ताय श्री प्रवचनाय नमः
१७ अतिथिसंविभाग व्रत युक्ताय श्री प्रवचनाय नमः
१८ विधिसूत्रागमाय श्री प्रवचनाय नमः
१९ वर्णक सूत्रागमाय श्री प्रवचनाय नमः
२० भय सूत्रागमाय श्री प्रवचनाय नमः
२१ उत्सर्ग सूत्रागमाय श्री प्रवचनाय नमः
२२ अपवाद सूत्रागमाय श्री प्रवचनाय नमः
२३ उभय सूत्रागमाय श्री प्रवचनाय नमः
२४ उद्यम सूत्रागमाय श्री प्रवचनाय नमः
२५ सर्वनय समूहात्मकाय श्री प्रवचनाय नमः
२६ सप्तभङ्गी रचनात्मकाय श्री प्रवचनाय नमः
२७ द्वादशाङ्गगणीपिटकाय श्री प्रवचनाय नमः

उपरोक्त खमासमण देकर २७ लोगस्स का कायोत्सर्ग करना।

स्तुति

श्री जिनेश्वर परमेश्वर देवने जिसको स्थापन किया, जो साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध संघ तथा श्रीमुख से भाषित स्याद्वाद मुद्राङ्कित जो सिद्धान्त कहा तदनुकूल

श्रद्धा प्रवर्तन करे, जो श्री संघ प्रवचन कहा जाता है वह कैसा है, जैसे रत्नों की खान रोहणाचल के समान् गुणों की खान श्री प्रवचन है, जंसे तारों का स्थान आकाश में है उसके समान गुणों का स्थान श्री प्रवचन है, जैसे कल्पवृक्ष सदा स्वर्ग में रहता है वैसे ही सब गुण सर्वदा श्री प्रवचन में रहते हैं। कमलों का आकर सर के समान श्री प्रवचन गुणों का आकर है जैसे जल का अविनाशी कोष समुद्र है वैसे गुणों का खजाना श्री प्रवचन है, तेजपुञ्ज जैसे सूर्य है वैसे गुणपुञ्ज श्री प्रवचन है, सकल बीजोत्पत्ति के अवन्ध्य हेतु पुष्करावर्त के समान सम्यगगुण बीजोत्पत्ति का हेतु श्री प्रवचन संघ भक्ति है, जैसे अमृतपान से सर्व विष नष्ट होता है, प्रवचनामृतपान से परम मिथ्यात्व का नाश होता है, ऐसा श्री प्रवचन अपार संसार रूपी समुद्र से उतार कर शाश्वत् मुक्ति पद को प्राप्त कराता है ऐसा श्री प्रवचनजी को प्रदक्षिणा, हमारी वन्दना रहे और भव भव में श्री प्रवचन में हमारी भक्ति बनी रहे।

इस प्रकार स्तुति करके श्री सिद्धान्त का विधि पूर्वक कर्पूरादि सुगन्ध वास धूपादि से पूजन करे और यथाशक्ति पुस्तक का उपकरण करावे, प्रभावना करे, साधु साध्वी प्रमुख को औषध, अन्न, वस्त्र, प्रभृति, द्रव्य यथायोग्य देवे और दिन रात प्रवचन के गुण गान करे। इस प्रकार तृतीयपद के आराधन से सर्वेष्ट सिद्धि होती है।

इस पद का ध्यान उज्जवल वर्ण से करना। इस पद की आराधना से ही जिनदत्त सेठ तीर्थंकर पद को प्राप्त हुए जिनकी कथा इस प्रकार है।

है और राजा भी धनवान की ही इज्जत करता है। वास्तव में सब जगह स्वार्थ का ही स्नेह है जहां तक स्वार्थ होता है वहां तक ही स्नेह है इसलिये इसमें पिता का क्या दोष है ? यदि पिता को मेरे से धन अधिक प्रिय है तो मुझे आज से पिता के द्रव्य की एक कोड़ी भी काम में नहीं लेनी चाहिए। "विदेश जाकर धन पैदाकर के ही पिता के घर में प्रवेश करूंगा।" ऐसा निश्चय कर उसी दिन रात्रि को जब सब सो रहे थे व सब जगह शान्ति का साम्राज्य था तब जिनदत्त बिना किसी को कहे अकेला नगर के बाहर निकल कर चला गया। चलते चलते चंपापुरी में धनावाह सार्थवाह के घर पहुंचा। सार्थवाह ने, रात को स्वप्न में कल्पवृक्ष देखा था इसलिये आगन्तुक को देखते ही अत्यन्त हर्ष पूर्वक आदर से जगह दी। कहा है कि—

सज्जन आव्या पाहुणा, आपे चार रत्न।
पाणी, वाणी, बेसणुं, आदरसेती अन्न ॥

खरे खर ! भाग्यशाली पुरुष जहा जहां जाता है वहां वहां उसका आदर सत्कार होता है। कहा है कि—

पान पदारथ सुगुण नर, वण तोल्यां बेचाय।
जिम जिम चंपे भुंमडो, त्युं त्युं मूल मोघेरा भाय ॥

और भी कहा है कि—

गुणाः सर्वत्र पुज्यंते, किमायेंपैः प्रयोजनं।
विक्रियन्ते न घटामि गविः क्षीर विवर्जिता ॥

सब जगह गुणों की पूजा होती है, आडम्बरों से क्या प्रयोजन ? बिना दूधवाली गायें सिर्फ बांधने के लिये नही बिकती है।

गुणी जन जहां जाता है वहां अपने गुणों से सबके हृदय को आकर्षित कर सबका प्रिय बन जाता है। जिनदत्त ने भी अपने गुणों से सार्थवाह के सारे कुटुम्ब को अर्हत धर्म का उपदेश कर धर्म पर श्रद्धावान् बनाया। इस तरह कुछ दिन व्यतीत होने पर सार्थवाह ने जिनदत्त के गुणों से मुग्ध हो पूछा—'हे महाभाग्य ! तुमको यहाँ रहते कुछ दिन व्यतीत हो गये हैं परन्तु हम सबको तुम्हारे गांव, नाम और कुल का पता नही है तथा आप किस कारण से देशाटन कर रहे हो ? यदि आपको कहने में कोई आपत्ति नही हो तो हमें बता कर कृतार्थ करो।

जिनदत्त—श्रेष्ठीवर्य मुझे कहने में कोई आपत्ति नहीं है। ऐसा कह उन्होंने अपना सारा वृतान्त बताया। सार्थवाह ने उसका वृतान्त सुन हृदय में प्रसन्न हो विचारने लगा—"वास्तव में यह उत्तम कुल में उत्पन्न हुआ है और गुणवान है। इसलिये मेरी पुत्री हरिप्रभा के लिये यह योग्य वर है" ऐसा विचार कर बड़े उत्साहपूर्वक जिनदत्त के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर कन्यादान में अपार धन दिया। वास्तव में पुण्यशाली पुरुष जहां जाता है वहां वह सुखी ही होता है। कहा है कि—

सर्वत्र वायसाः कृष्णाः सर्वत्र हरिताः शुकाः ।
सर्वत्र दुखीनां दुःखं, सर्वत्र सुखीनां सुखं ॥१॥

अर्थ—जिस तरह कौए सब जगह काले और तोते सब जगह हरे होते हैं उसी तरह सुखियों को सब जगह सुख और दुखियों को सब जगह दुःख होता है।

इस तरह जिनदत्त पूर्व पुण्योदय से सुख पूर्वक श्वसुर के यहाँ कुछ समय रहकर सबकी आज्ञा लेकर अपने नगर की ओर चलने को तैयार हुआ; तब सेठ ने दहेज में अपना अमूल्य एकावली हार तथा अपार धन दिया। साथ में नौकर रथ, पालकी आदि भी देकर हर्षपूर्वक विदा किया।

अनेक नौकरों के साथ चलते चलते मार्ग में एक सरोवर के पास मुकाम कर सब विश्राम करने लगे। वहाँ से थोड़ी दूर वृक्षों की कुञ्ज में विद्याधर मुनि को कायोत्सर्ग में स्थिर देख दोनों स्त्री पुरुष चारण मुनि के पास आकर विनय पूर्वक वंदना कर उनके सामने बैठ गये। इतने में मुनि ने कायोत्सर्ग पूरा कर धर्म लाभ कहा और उनको योग्य समझ धर्म देशना देने लगे।

"अहो भव्य जनो, इस अनादि और दुख से भरपूर संसार समुद्र में डूबते प्राणी को धर्म सिवाय किसी का सहारा नहीं है। धर्म से सब प्रकार का सुख, वैभव और ऐश्वर्य प्राप्त होता है। उत्तम कुल में जन्म होता है और मोक्ष भी प्राप्त होता है। धर्म कई प्रकार से होता है—जैसे १—सब जीवों पर दया करने से, २—ज्ञान व क्रिया से, ३—ज्ञान, दर्शन और चारित्र से, ४—दान, शील, तप और भावना से, ५—पंच ... से, ६—षड् आवश्यक से, ७—सप्तनय से, ८—अष्ट

प्रवचन से, ९–नव तत्व से और १०–क्षमादि दश विधि यति धर्म से; इस तरह धर्म के भिन्न भिन्न स्वरूप हैं। उनकी आराधना करने से प्राणी सुर नर सम्बन्धी अनेक प्रकार के सुखों को प्राप्त कर अन्त में कर्म मल रहित हो निरंजन निराकार हो परमानन्द को प्राप्त करता है।

यह देशना सुन विनय पूर्वक प्रणाम कर जिनदत्त बोला–हे भगवन्! ऐसा उत्तम प्रकार का धर्म किसने बताया वह कृपा कर कहो? मुनि–हे महाभाग्य! यह धर्म प्राणी मात्र का उपकार करने वाले श्री जिनेश्वर भगवान ने बतलाया है। जिनदत्त–हे भगवन्! ऐसे उत्कृष्ट पद का लाभ किस पुण्य के उदय से प्राप्त किया जा सकता है? मुनि–सौभाग्यशाली! त्रैलोक्यवंद्य तीर्थंकर पद की प्राप्ति के लिये अरिहंतादिक बीस स्थानक की निज शक्तिनुसार आराधना करने और उसमें भी तीसरे पद–अर्थात् श्री संघ की भक्ति भावपूर्वक करने से उत्कृष्ट पद प्राप्त होता है। इसलिये कहा है कि–

गुणानामिह सर्वेषां, रत्नानामिव रोहणः ।
श्रीमान् श्रमणसंघो, आधारः परमो भुवि ॥

अर्थ–जैसे इस पृथ्वी पर सब रत्नों का आधार स्थान रूप रोहणाचल है वैसे सर्व गुणों का आधार रूप श्री श्रमण संघ है।

इसे तीर्थंकर भगवान भी धर्मोपदेश समय 'नमो तिथ्यस' कहकर नमस्कार करते है। श्री संघ की भक्ति परम पद को देनेवाली है। श्री संघ की भक्ति करनेवाले विशाख नाम के

सेठ को उसी भव में किसी सम्यग्दृष्टि देव ने प्रसन्न होकर चिन्तामणि रत्न दिया था। बाद में उस सेठ ने श्रीसंघ की अतिशय गौरवपूर्वक भक्ति कर और सम्यक्त्व शुद्ध कर तीर्थंकर पद प्राप्त किया। इसलिये हे सौभाग्शाली! सब क्लेशों को दूर करने के लिये उल्लासपूर्वक श्री संघ की अत्यंत भाव से भक्ति करो।"

इस प्रकार श्री संघ की भक्ति का महत्व सुन भावपूर्वक तीसरे पद की आराधना का नियम गुरू से ग्रहण कर पुनः विनय पूर्वक वंदना की। पीछे परिवार सहित अपने नगर में गया। स्वजन सम्बन्धी उसकी अत्यन्त ऋद्धि को देख मिलने आये। 'इसके बाद निरंतर भावपूर्वक तपस्वी, ग्लान, वृद्ध आदि सुपात्रों को वस्त्र, पात्र, आहार, औषधि आदि देने लगा। इसी तरह निरन्तर जिनेश्वर भगवान को प्रणाम कर भवों का नाश करनेवाली गुरू देशना सुनकर सम्यक्त्व में निश्चल चित्त वाला हो चतुर्विध संघ का यथाशक्ति भक्ति करने लगा। कहा है कि जो भी श्री संघ की भक्ति कर अपना द्रव्य सत्पात्रों में व्यय करता है वह सर्व ऐहिक सम्पत्तियों से अपना गृह भरता है और जो कुपात्रों में अपना धन खर्च करता है वह जिस प्रकार रोगी को कुपथ्य देने से परिणाम में दुखी होता है उसी तरह कुपात्रों में व्यय किया गया द्रव्य कष्ट को देने वाला होता है।' कुछ समय बीतने पर उस नगर के राजा को बहुमूल्य भेंट की। उसे पाकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और बड़े आदर से जिनदत्त को बुलाकर राज्य सभा में उसे नगर

सेठ की पदवी प्रदान की। इससे नगर में उसका बहुत मान बढ़ गया तथा देश विदेश में भी श्री संघ की भक्ति के प्रभाव से यश फैलने लगा।

एक समय देवलोक में देवसभा में इन्द्र ने जिनदत्त सेठ की प्रशंसा करते हुए कहा कि मनुष्यों में श्रेष्ठ, निरभिमानी, कदाग्रह रहित श्री संघ की शक्ति अनुसार भक्ति करने वाले जिनदत्त सेठ को धन्य है, क्योंकि वर्तमान समय में उसके समान अन्य कोई नहीं है। इस प्रकार इन्द्र महाराज के वचनों पर विश्वास न कर रत्नशेखर देव जिनदत्त की परीक्षा लेने के लिये श्रावक का कपट वेष बनाकर सेठ के घर आया। उसे देख जिनदत्त ने खड़े हो प्रणाम कर कहा–'हे भाग्यशाली पधारो, मैं आज आपके दर्शन से पवित्र हुआ हूँ। मेरा आज का दिन धन्य है कि आप स्वधर्मी बन्धु के पवित्र दर्शन हुए।' इस प्रकार उसका आदर सत्कार कर सुन्दर आसन पर बिठा कर कहा–'हे पुण्यशाली! कहो क्या आज्ञा है। कपट श्रावक–हे सेठ! मैंने अनेक मनुष्यों से आपकी प्रशंसा सुनी है कि आप कल्पवृक्ष के समान स्वधर्मी की कोई भी प्रार्थना अस्वीकार न कर उसे इच्छित वस्तु बिना किसी संकोच के देते हैं। इसीलिये मैं अपनी स्त्री के आग्रह से उसकी इच्छा पूरी करने के लिये आपसे एकावली हार लेने आया हूँ। यदि मैं बिना हार के घर जाऊंगा तो इच्छित वस्तु नहीं मिलने के कारण वह अपने प्राण त्याग देगी। मेरी स्त्री मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है इसलिये उसके बिना मैं एक क्षण भी

जीवित नहीं रह सकूंगा। अतः हे कृपासिन्धु! योग्यायोग्य का विचार किये बिना मेरी प्रार्थना को अस्वीकार न कर एकावली हार मुझे देंगे—ऐसी आशा है।'

इस प्रकार के करुणामय वचन सुनकर जिनदत्त ने कहा—'हे स्वामी! यह सब द्रव्य स्वधर्मियों के लिये ही है, मैं तो सिर्फ उसका खर्च करने वाला हूँ। ऐसा कह तुरन्त अत्यन्त मूल्यवान एकावली हार निकाल कर उसके सुपुर्द किया। उसकी ऐसी उदारता देख देव प्रसन्न हो अपने असली रूप में प्रगट हो उसके सिर पर फूलों की वृष्टि कर उसकी स्तुति करने लगा—'हे सेठ आपको धन्य है, आपने श्रावक धर्म का यथार्थ पालन किया है तथा प्रवचन की और श्री संघ की भक्ति कर जिन शासन की प्रभावना की और अपने कुल को उज्ज्वल किया है इस प्रकार स्तुति कर चिन्तामणि रत्न देकर देव अपने स्थान को लौट गया। चिन्तामणि रत्न के प्रभाव से जिनदत्त श्री संघ के इच्छित कार्य पूरे करने लगा। फिर चार ज्ञान को जानने वाले रत्नप्रभु गुरु के पास अपनी भव स्थिति पूछी। तब गुरु ने कहा, 'हे देवानुप्रिय! तू यहाँ से मृत्यु पाकर पहले देवलोक में देवता होगा, वहाँ से चवकर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पद प्राप्त कर मुक्ति को प्राप्त करेगा।' इस प्रकार गुरु के वचन सुनकर अत्यन्त हर्ष पूर्वक सात क्षेत्रों में खूब द्रव्य खर्च करता हुआ शुभ भावना पूर्वक अपनी स्त्री और दूसरे बहुत श्रावकों सहित गुरु महाराज के पास से चारित्र लिया। मुनि अवस्था में भी उल्लास पूर्वक प्रवचन

की भक्ति करता, मुनियों को गोचरी लाकर देता और यथाशक्ति वैयावच्च करता हुआ निरतिचार चारित्रपालन कर काल धर्म पा प्रथम ग्रैवेयक देवलोक में ऋद्धि वाला देव हुआ, वहां से आयु पूर्ण होने पर महाविदेह क्षेत्र में आगामी चौवीसी में तीर्थंकर हो मोक्ष प्राप्त करेगा। हरिप्रभा भी उन्हीं तीर्थंकर की गणधर हो मोक्ष प्राप्त करेगी।

३५ बोधिदुर्लभ भावना भाविताय श्री आचार्याय नमः
३६ धर्मसाधक अरिहंत दुर्लभ भावना भावितय
श्री आचार्याय नमः

उपरोक्त खमासमण देकर ३६ लोगस्स का कायोत्सर्ग करना ।

स्तुति

श्री आचार्य, परमेष्ठी, सकल मुनि श्रेष्ठ, गुणगणी ज्येष्ठ, शाश्वत, धीर, प्रवचन, प्रकाशक, प्रवचनाधार, साधनैकचक्षु-भूता आलम्बन भूत, मेढी भूत, सारण, वारण, चोयण, पडिचोयणा कुशल, तीर्थंकरोपम, बहुश्रुत, क्रियाधार, धर्माधार, स्वपर समयज्ञ, परहृदयाकूतज्ञ, द्रव्य-क्षेत्र-भाव-कालज्ञ, [1]कुत्तियावण समान सूरिमन्त्रधारी, गणधर, गणी, गच्छस्तम्भपद-धारी, निर्दम्भ, श्रेष्ठ सुगुरु गणि, पिटकधारी, शासनोन्नतिकारी, शासनोद्योतकारी, अर्थधर, सूत्रधर, सद्वानुयोगधर, शुद्धानियोधर, ज्ञानयोगी, अनुभव योगी, श्रुतुद्धार प्रवचनोद्धार, आज्ञाऐश्वर्यधर, भट्टारक, भगवान, महामुनि, मुनिसेव्य, मुनिनायक, गच्छभार धुरन्धर, मार्गदर्शी, निजानुभव स्पर्शी, अक्रोधी, जगप्रतिबोधी, अमानी, नित्य शुद्धध्यानी, अमायिक, रत्नत्रय साधक सहायी, अलोभी, अक्षोभि, शुद्धभापी, गुणगणालङ्कृत ॥

ऐसे आचार्य भगवान को हमारी त्रिकाल वन्दना है, हमारे सम्यगाराधन से सहाय शरण त्राण मति गति श्री आचार्य पूज्य है।

१—जिस दुकान में सर्व वस्तु मिले उसके समान ।

इस पद के आराधन में दिन रात पौषध चौविहार उपवास करना चाहिये। पीछे यथाशक्ति पारणा, अतिथि-संविभाग करे तथा मुनि को अन्न, पान, वस्त्र, पात्र, औषध, पुस्तक, उपकरण, प्रभृति से प्रतिलाभ करावे। आचार्य सेवा से ही सुलभ बोध होता है। इस तरह से चतुर्थ पद का आराधन करने से अभिमत सिद्धि होती है।

इस पद का ध्यान पीतवर्ण से करना। इस पद की आराधना से पुरुषोत्तम राजा तीर्थंकर हुए जिनकी कथा इस प्रकार है।

च आचार्यपद की भक्ति पर पुरुषोत्तम राजा की कथा

इस भरतक्षेत्र में पद्मावती नाम की नगरी थी। वहां इन्द्र के समान ऐश्वर्यवान् पुरुषोत्तम राजा निष्कंटक हो प्रजा का पालन करते हुए सुख पूर्वक राज्य करते थे। उसके बुद्धिमान तत्वातत्व का जाननेवाला, समयक्त्व श्राद्ध गुणों से विभूषित, अर्हंत धर्म को माननेवाला सुमति नाम का मंत्री था। एक दिन राजा सर्व सामन्त, सेठ और मंत्री सहित सभा में बैठा हुए थे कि इतने में एक कपटी, रौद्र नाम का कपाली योगी राजा को आशीर्वाद देकर सभा में आकर बैठ गया। राजा ने आदर पूर्वक कुशल क्षेम पूछ, आने का कारण पूछा। योगी बोला—हे नरेन्द्र तेरे प्रताप से तेरी सम्पूर्ण प्रजा सुख से रहती है तो फिर मुझ योगी की कुशलता का क्या पूछना? अर्थात्

लगा। इतने में योगी के कपाल में धूम्र का प्रकाश दिखने लगा और राजा ने कुलदेवी को स्मरण किया। कुलदेवी के प्रभाव से और राजा के पुण्योदय से शव उछलकर कुण्ड में गिरा। ऐसा देखकर योगी सोचने लगा कि क्रिया करने में कोई कमी रह गई मालूम होती है, इसलिये फिर जाप करूं। ऐसा विचार कर फिर जप करने लगा तब भी शव ही पुनः गिरा। इससे क्रोधित हो राजा को मारने के लिये विद्या देवी का ध्यान करने लगा। इतने मे राजा की कुलदेवी ने उसी योगी को उठाकर अग्निकुण्ड में फेंक दिया और वह तुरन्त सुवर्ण पुरुष बन गया। वास्तव में जो दूसरों का बुरा कर अपना स्वार्थ सिद्ध करता है वह अपना ही नुकसान करता है कहा है कि—

द्रुह्यन्ति ये महात्म्येभ्यो, द्रुह्यन्त्यात्मन एव ते।
सूर्येन्दुद्रोहकृद्राहुः, शीर्षशेषोऽभवन्नकिं ॥

अर्थः—जो महात्मा का बुरा चाहता है वह स्वयं अपना ही बुरा करता है। सूर्य चन्द्र से द्वेष करने से क्या सिर्फ राहु का मस्तक ही नहीं रहा? अर्थात् राहु ने सूर्य चन्द्र का बुरा चाहने से धड़ चला गया और सिर्फ मस्तक ही रहा।

यह आश्चर्यजनक घटना देख राजा हृदय में हर्ष और विषाद पूर्वक सोचने लगा कि विद्या का कैसा प्रभाव है? फिर उस सुवर्ण पुरुष को उठा कर गुप्त स्थान में रख दिया और अपने महल में आकर सो गया। प्रातःकाल रात्रि की सारी घटना मंत्री को कही और सुवर्ण पुरुष को महल में मंगवाया।

बाद में अनेक दुखी मनुष्यों के दारिद्र को दूर करके उनको धनवान बनाया। फिर एक सुन्दर जिन चैत्य बना उसमें सुवर्ण की प्रतिमा स्थापन कर खूब धन व्यय किया।

एक दिन राजा चतुर्दशी का उपवास कर रात्रि को सुख पूर्वक सो रहा था उस समय उसने एक स्वप्न देखा। स्वप्न में उसने किसी एक नगरी में रहनेवाली रत्नादेवी नाम की तापसी के पास अत्यंत रूपवान, लावण्यमयी राजकन्या को शास्त्राभ्यास करते देखा। ऐसी अनुपम सौन्दर्यमयी सुन्दरी को देखकर राजा का स्वप्न भंग हो गया और वह जग गया। प्रातःकाल मंत्री को बुलाकर अपनी जिज्ञासा बतलाई। यह सुनकर मंत्री ने कहा हे राजा स्वप्न में देखी हुई वस्तु का क्या विश्वास ? क्योंकि वात, पित्त, कफ और चिंता से तथा सुनी हुई बात से आया स्वप्न व्यर्थ होता है। इस पर एक मूर्ख तापस की कथा कहता हूं उसे आप सुनियेः—

वैभवशाली धनपुर नाम का एक सुन्दर गांव था। वहां बचपन से तपस्या करनेवाला एक तापस रहता था। उसने एक दिन स्वप्न में अपने मठ को केशरिया लड्डुओं से भरा हुआ देखा। सवेरे प्रसन्नता से जागृत होकर अपने शिष्यों से कहने लगा कि आज इस गांव के सब लोगों को बुलाकर केशरिया लड्डुओं का भोजन कराओ। गुरु की आज्ञा से शिष्यों ने गांव के सब लोगों को मठ के समीप इकट्ठा किया। पीछे मठ में जाकर शिष्यों ने देखा वहां कोई भोजन की सामग्री नहीं तो गुरु के पास आकर कहने लगे कि महाराज

को धन्य मानने लगा। इसके बाद राजा ने घोड़े को एक वृक्ष के नीचे बांध तपस्विनियों के पास जाकर विनय पूर्वक प्रणाम कर बैठ गया। इतने में तापसी बोली हे भाग्यशाली ! तुम कौन हो ? कहां रहते हो ? और यहां कैसे आना हुआ है ? यदि आपत्ति नहीं हो तो मुझे बतलाओ।

राजा—देवी मैं पद्मावती नगरी में रहता हूँ। तीर्थयात्रा करने निकला हूँ। यहां आकर आपकी कीर्ति सुनकर आपके दर्शन करने आया हूँ।

राजा के मधुर और विनय युक्त वचन सुनकर तपस्विनी बहुत प्रसन्न हुई। फिर राजा को भोजन करा उद्यान में मंद २ शीतल पवनयुक्त वृक्षों के कुञ्ज में आराम करने को कहा। राजा को वहां जाकर सोते ही नींद आगई। इतने में कोई विद्याधर उधर होकर निकला और उसकी दृष्टि सोते हुए राजा पर पड़ी। उसे देखकर वह विचारने लगा कि इस कामदेव समान पुरुष को देखकर कहीं मेरी स्त्री आसक्त न हो जाय। ऐसा विचार कर राजा के दूसरे हाथ में कोई जड़ी बांध दी जिससे वह मनोहर स्त्री रूप में बदल गया। इसके बाद थोड़ी देर में विद्याधर की स्त्री वहां आई उसने इस सुन्दरी को देखकर सोचा कि कहीं मेरा पति इसे देखकर इस पर मोहित न होजाय। ऐसा सोच उसने राजा के दूसरे हाथ पर कोई जड़ी बांध दी जिससे वह स्त्री फिर युवान कामदेव समान रूपवाला पुरुष बन गया। इसके

बाद राजा ने जागृत हो अपने हाथ में बंधी हुई एक जड़ी खोली और वह पीछा विद्याधर की बंधी हुई जड़ी के प्रभाव से स्त्री रूप में हो गया। ऐसा आश्चर्य देखकर दूसरी जड़ी दूसरे हाथ से खोली तो फिर वह असली रूप में हो गया। जड़ियों का यह अपूर्व प्रभाव देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उन जड़ियों को गुप्त रख राजा तापसणी के पास आया। तब उसने पूछा हे वत्स तू देखने में राजा के समान मालूम होता है इसलिये विना किसी शंका व भय के जो सत्य बात हो वह बतला दे।

राजा—देवी! आपका आग्रह है तो मैं सत्य बात बतलाता हूँ। मैं पद्मावती नगरी का पुरुषोत्तम राजा हूँ। एक दिन स्वप्न में आपकी शिष्या राजकुमारी को देखकर बड़े प्रयत्न से पता लगाकर आपके पास आया हूं। राजा की बात सुनकर तापसी ने कहा भाग्यशाली भूपाल तुम जिस आशा से आये हो वह पूरी होना कठिन है क्योंकि यह राजकन्या पुरुष द्वेषिणी है और अपना कदाग्रह छोड़ती नहीं।

राजा—हे माता! मैं स्त्री रूप में होकर उसका कदाग्रह दूर कर अपने पर आसक्त कर लूंगा परन्तु इसमें आपकी खास जरूरत पड़ेगी। तापसी ने पूछा आप किस तरह स्त्री रूप में हो जायंगे? राजा ने कहा देवी! मेरे पास एक अनुपम जड़ी है उसके प्रभाव से नवयौवना स्त्री हो सकता हूं। ऐसा कह वह जड़ी तापसी को बताई जिससे वह आश्चर्यचकित हो गई। पीछे राजा ने वह जड़ी अपनी भुजा पर

उस जंगल में दुर्भाग्य से महा भयंकर दावाग्नि लगी, जिसमें सब पशु इधर उधर भागते हुए जहां हस्ती का जोड़ा था वहां जाकर इकट्ठे होने लगे । उन जीवों पर दया आने से वह हाथी का जोड़ा वहां से दूसरी जगह चला गया। वहां भी दावग्नि पहुंच गई। इसलिये हाथी हथिनी को छोड़ कर कहीं और चला गया और हथिनी पुरुष जाति को धिक्कारती हुई अनुकंपा के भाव से जल कर मैं यहां राजकन्या हुई हूं। हे सखी ! इस कारण मैं पुरुष के स्वार्थी स्नेह को विचार ब्याह नहीं करना चाहती।

इस प्रकार राजकुमारी के पूर्व भव को सुन राजा को भी जाति स्मरण हुआ। पीछे थोड़ी देर दूसरी बातचीत कर सुलोचना रूप राजा ने तापसी के पास आकर सारा वृतान्त कहा। पीछे राजा के कहने से तापसी ने राजकन्या और राजा के पूर्वभव का चित्र तैयार किया जिसमें एक जंगल में भयंकर दावानल लगा हुवा है, बहुत से जंगली जीव इधर उधर भागते हुए अग्नि में जल कर मर रहे हैं। इनमें एक हाथी का जोड़ा था जिसमें हथिनी अग्नि की ज्वाला से तड़फ रही है और हाथी नजदीक के सरोवर से अपनी सूंड से शीतल जल लाकर बार २ डालता है। परन्तु अंत में वह मर जाती है। स्नेह के कारण हाथी भी अग्नि में गिर कर मर जाता है। इस प्रकार का चित्र एक आदमी के हाथ में देकर नगर में भेजा। उस चित्र को देखकर जो उसके बारे में पूछता तो वह इस प्रकार कहता कि पद्मावती नगरी के राजा पुरुषोत्तम

को जाति स्मरण हुआ है और अपने पूर्वभव की पत्नि को प्राप्त करना चाहता है, उसी का यह चित्र है।

उस आदमी को नगर में घूमते हुए राजकुमारी ने देखा इसलिये उसको बुलाकर सब हाल पूछा। उस आदमी ने पहले के अनुसार सारी बात कह सुनाई। इससे पुरुष द्वेष राजकुमारी के मन से दूर हो गया और पुरुषोत्तम राजा से अनुराग करने लगी। यह बात राजकुमारी के पिता को मालूम हुई जिससे उसने खुश होकर विवाह की तैयारी कर बहुत से मनुष्यों के साथ पद्मावती नगरी भेजने का प्रबंध किया। राजकुमारी माता पिता व तापसी को प्रणाम कर सब का आशीर्वाद लेकर पद्मावती नगरी को चल दी। अब पुरुषोत्तम राजा भी तापसी को नमस्कार कर अपनी मनोकामना पूर्ण हुई जान स्त्री रूप में ही राजकन्या के साथ अपने नगर को रवाना हुआ। कुछ ही दिनों में वे पद्मावती नगरी के उद्यान में आकर ठहरे। वहां से संध्या को चुपचाप स्त्री वेष छोड़-कर पुरुषोत्तम राजा महल में गया। राजा के आगमन की सूचना मिलने पर नगर के सेठ, सामंत, मंत्री वगैरह नमस्कार करने आये। पीछे राजा ने सारा वृतान्त मंत्री को बतलाया और शुभ मुहुर्त देख उत्तम लग्न में राजकुमारी पद्मश्री के साथ बड़े ठाठबाट के साथ शादी की।

कुछ समय आनन्द सहित विषय सुख भोगते हुए राणी ने सिंह स्वप्न सूचित गर्भ धारण किया। नौ मास पूरे होने पर पुत्र हुवा। राजा ने बड़े हर्ष पूर्वक जन्मोत्सव किया।

पुत्र का नाम पुरुषसिंह रखा। बड़े लाड़ प्यार से पालित विद्याभ्यास कर सब शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर यौवन अवस्था में पहुंचा। इसलिये राजा ने उत्साह से आठ राजकुमारियों के साथ राजकुमार की शादी कर दी। इस प्रकार राजा अपने आपको सुखी मानने लगा परन्तु सब की स्थिती कभी एक समान नहीं रहती है। अब धीरे २ राजा का भाग्य चक्र उलटा चलने लगा। पूर्व कर्मवश राणी के शरीर में दाहज्वर की महावेदना उत्पन्न हुई। उसी वेदना से राणी की मृत्यु हो गई। राणी पर अधिक स्नेह होने के कारण खाना पीना, राजकाज छोड़कर रातदिन रोने लगा। उस समय उस नगरी के उद्यान में चार ज्ञान को धारण करने वाले परमोपकारी श्रीदेव मुनिश्वर पधारे। उनको नमस्कार करने के लिये नगर के सब लोग जाने लगे। राजा भी मंत्री सहित आकर गुरु वंदन कर विनय पूर्वक उचित स्थान पर बैठ गया। उस समय करुणा सागर मुनिराज धर्मदेशना देने लगे।

हे भव्यजीवों! मनुष्य जन्म, आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल और धर्मश्रवण का योग मिलने पर भी जो प्राणी अनन्त सुख देनेवाले धर्म में चित्त नही लगाता वह बारबार दुःख से भरे चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता है। संसार में एक भी ऐसी योनी नही है जिसमें यह जीव अनन्त बार जन्मा व मरा न हो। यह जीव कर्म वश मनुष्य जन्म प्राप्त कर पौद्गलिक सुख की इच्छा में आसक्त होकर मनुष्य जन्म ऐसे ही खो देता है। इस जीव ने पौद्गलिक सुख को अनन्तबार

भोगा है फिर भी इसको तृप्ति नहीं। वास्तविकता में इस पौद्गलिक सुख को सच्चा सुख नहीं कह सकते क्योंकि जिस तरह किंपाक का फल खाने में मीठा होता है परन्तु अन्त में दारुण दुःख देनेवाला होता है। ऐसे दुखगर्भित सुख मे गुणीजन क्यों आसक्त होता है? सांसारिक सुख क्षणिक और असार है इसलिये उसका त्याग कर अनन्त सुख को देने वाले जैन धर्म में रुचि रखना चाहिये। धर्म दो प्रकार का है—एक पंच महाव्रत रूप श्रमण धर्म जिससे मोक्ष सुख प्राप्त होता है। दूसरा सम्यकत्व मूल श्रावक के वारह व्रत रूप धर्म हैं जिससे उत्कृष्ट वारहवें देवलोक का सुख प्राप्त होता है। इस तरह अनेक भवोपार्जित कर्म का नाश कर अक्षयसुख को देनेवाले धर्म का चिंतन करो।"

गुरु की धर्म देशना श्रवण कर राजा को प्रतिवोध हुवा और कहने लगा—हे करुणानिधि! इस अनन्त संसार में भ्रमण कर अनेक जन्म मरण के दुःख से भय पाकर मै आपकी रण में आया हूं इसलिये मुझे इस दुःख से मुक्त करनेवाला चारित्र ग्रहण करने की आज्ञा दो।

गुरु—हे देवानुप्रिय! तुमको जिसमे सुख मिले वैसा करो।

पीछे गुरु की आज्ञा लेकर नृपति राजमहल में आकर सातों क्षेत्र में खूब द्रव्य व्यय कर पुरुषसिंह राजकुमार को राज गद्दी पर स्थापन कर मंत्री सहित महोत्सव पूर्वक देव मुनिश्वर से चारित्र लिया। गुरु के पास सर्व क्रिया सीख समिति-

गुप्तयुक्त निरतिचार से चारित्र पालन कर नव पूर्वधर हुए ।

एक दिन अप्रमत्त राजर्षि मुनि शुभ ध्यान में रहकर इस प्रकार विचार करने लगे—अहो ! सम्यगज्ञान रूप चक्षु को देनेवाले, दुर्गति से तारने वाले गुरु से करोड़ उपाय करने पर भी उऋण नहीं हो सकते । माता, पिता, पुत्र, मित्र और स्त्री वगैरह तो सिर्फ इस भव में अपने स्वार्थ के खातिर ही उपकार करते हैं परन्तु गुरु महाराज तो निःस्वार्थ भाव से उपकार करनेवाले हैं इसलिये सच्चे माता पिता तो गुरु महाराज हैं । इस प्रकार विचार कर अपने मन में अभिग्रह धारण किया कि आज से मुझे नित्य गुरुजन की भक्ति करना । ऐसा अभिग्रह लेकर निरंतर अस्खलित भाव से गुरु की तैंतीस अशातना टालकर गुरु के छत्तीस गुणों का चिंतन कर अपने मुह से दूसरों के सामने गुरु के गुणों का कीर्तन करते हुए उत्कृष्ट पुण्योपार्जन कर तीर्थंकर नाम कर्म का बंध किया ।

एक दिन देवसभा में इन्द्र महाराज ने पुरुषोत्तम मुनि की प्रशंसा कर कहा कि—वर्तमान संसार में भरतक्षेत्र में मुनि गुणों से विभूषित पुरुषोत्तम राजर्षि के समान गुरु भक्ति करनेवाला दूसरा नहीं है । इस प्रकार मुनि की प्रशंसा सुन कोई ईर्षालु मिथ्या दृष्टि देव उन मुनि की परीक्षा करने के लिये मुनि का रूप धारण कर पुरुषोत्तम मुनि के पास आकर उनके अनेकों दोष बताने लगा और कटु वचन से वाक्य प्रहार कर भर्त्सना करने लगा । फिर भी समता

सिंधु राजर्षि मुनि जरा भी खेद नही करते हुए अपनी निंदा करते हुए गुरुभक्ति भाव से जरा भी विचलित नहीं हुए। इस प्रकार दृढ़ चित्तवाले मुनि को देख देव प्रगट होकर मुनि को तीन प्रदक्षिणा नमस्कार कर अपने अपराध की क्षमा मांग देवलोक में वापिस गया। राजर्षि मुनि अभिग्रह का पालन करते हुए अन्त में एक मास का अनशन कर अच्युत कल्प में महा समृद्धिवाले देव हुए। वहां से च्यव कर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पद प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

पंचम स्थविर पद आराधन विधि

"ॐ नमो थेराणं" इस पद को २० माला गिने।

इस पद के १० खमासमण देवे। प्रत्येक खमासमण से पूर्व यह दोहा कहे।

दोहा

तजि पर परणति रमणता, लहे निज भाव स्वरूप।
स्थिर करता भविलोक ने, जय जय स्थविर अनूप॥

१ श्री लौकिक स्थविर देशकाय लोकोत्तर स्थविराय नमः
२ श्री देशस्थविर देशकाय लोकोत्तरस्थविराय नमः
३ श्री ग्रामस्थविर देशकाय लोकोतरस्थविराय नमः
४ श्री कुलस्थविर देशकाय लोकोत्तरस्थविराय नमः
५ श्रीलौकिक कुल स्थविर देशकाय लोकोत्तरस्थविराय नमः
६ श्री लौकिक गुरु स्थविर लोकोत्तर देशकाय स्थविराय नमः
७ श्री लोकोत्तर श्री संघ स्थविराय नमः
८ श्री लोकोत्तर पर्याय स्थविराय नमः
९ श्री लोकोत्तर श्रुत स्थविराय नमः
१० श्री लोकोत्तर वय स्थविराय नमः

उपरोक्त खमासमण देकर १० लोगस्स का कायोत्सर्ग करे।

स्तुति

जगत में स्थविर-दो प्रकार के होते हैं एक लौकिक, दूसरे लोकोत्तर, उसमें देश वृद्ध नगर वृद्ध, ग्राम वृद्ध कुल वृद्ध, माता, पिता, प्रमुख लौकिक स्थविर हैं। उनका विनय प्रतिपत्ति इस लोक में यशवृद्धि का कारण है। परलोक में भी पुण्य का हेतु है जिससे तीर्थंकरादि भी माता पिता प्रभृति के विनय से नहीं चूकते। इससे लौकिक स्थविर को भी व्यवहार में नमस्कारादि करना योग्य है। दूसरा लोकोत्तर स्थविर, धर्मगुरु तथा श्री संघ है, जो तीन प्रकार का है १ पर्याय स्थविर, २ वय: स्थविर, ३ श्रुत स्थविर। जिनको दीक्षा लिए २० वर्ष हो गये हों उनको पर्याय स्थविर कहते हैं। जिनकी उम्र ६० वर्ष से अधिक हो उनको वय स्थविर कहते हैं। जो समवायङ्ग से ऊपर तक आगम पढ़े हों उनको श्रुत स्थविर कहते हैं। ये तीनों प्रकार के स्थविर शासन की शोभा, गण के भूषण, समस्त आचार विचार के सूर्य के समान प्रकाशक हैं, जिस कारण से उपाध्याय प्रवर्तक गणावच्छेदक रत्नाधिक को प्रवर्तन कराते हैं। जो मार्ग से शिथिल होते साधुओं को शिक्षा देकर स्थिर करते हैं, उत्साह को बढ़ाते हैं, क्रियादिक में पुष्ट करते हैं, जिनको पद प्राप्त नहीं हैं उनको पद प्राप्त कराते हैं और स्थिर रखते हैं। जैसे लोक नीति में बिना वृद्ध घर, लश्कर, समुदाय, ग्राम, नगर, राजा, सभा कुल पञ्चायत, बरात, जाति वगैरह शोभा नहीं देते इसी तरह स्थविर बिना गच्छ शोभा नहीं देता। श्रीसिद्धांतजी

आपके पीछे पीछे आती हूँ। इस तरह रोती हुई राजा से कहने लगी—महाराज ! मैं भी पति के साथ सती होना चाहती हूँ। क्योंकि कुलीन और सती स्त्री का पति के बाद जीना व्यर्थ है। इसलिये मेरे पति के अंग के साथ मेरा भी अग्नि सस्कार करो जिससे मैं जल्दी अपने पति से जाकर मिलूँ। राजा आदि सभासदों ने उसे बहुत समझाया परन्तु उसने अपनी हठ नहीं छोड़ी। इसलिये राजा ने सबकी सलाह से अवयवों के साथ स्त्री का अग्नि सस्कार कर शोकपूर्ण हृदय से सभा में आकर बैठा। इतने में आकाश से प्रफुल्लित होता हुआ पूर्वोक्त विद्याधर (इन्द्रजालिया) राजसभा में आकर राजा को नमस्कार कर कहने लगा। हे सत्यमूर्ति नराधीश ! मैं आपके प्रताप से मेरे शत्रु का नाश कर निर्विघ्नता से आपके पास आया हूँ। अब आप मेरी सुख की देवो मेरी प्राणप्रिया सुलोचना को वापिस लेजाने को आज्ञा दीजिये। इन्द्र-जालिया को अचानक आया देख व उसके पूर्वोक्त वचन सुन राजा स्तब्ध हो कुछ भी उत्तर दिये बिना भूमि की तरफ दृष्टि कर बैठा रहा। राजा को इस प्रकार बैठे देखकर पुनः इन्द्र-जालिया बोला—हे नरपति! आप बिना कुछ कहे उदास होकर क्यों बैठे हो ? क्या मेरी सुन्दर स्त्री को देखकर तुम्हारे मन में पाप पैदा होगया है ?

ऐसे कटु वचन सुनकर राजा मस्तक ऊचा कर बोला—हे विद्याधर ! आप ऐसा न कहें। आपकी स्त्री मेरी बहिन के समान है। वह स्त्री आपके कटे हुए अवयवों को देखकर उनके साथ जलकर भस्म हो गई है

राजा की बात सुन पुनः मर्म भेदी बचन कहने लगा—हे नृपति ! सत्पुरुष प्राणान्त कष्ट होने पर भी सत्य से विचलित नहीं होता। यह पृथ्वी सत्यवान पुरुषों के सत्य पर ही टिकी हुई है। लोग आपको सत्यवादी कहते हैं। क्या आप अपने सत्य से भ्रष्ट हो गये हो ? अरे स्त्री को देखकर कौन चलायमान नही होता ? राजा आपको बुद्धि भ्रष्ट होगई है। आप सत्य से भ्रष्ट हो गये हो।

इन्द्रजालिया के तीक्ष्ण तीर समान वाक्य सुनकर राजा का दिमाग घूमने लगा और मस्तक के हाथ लगा नैत्र बन्द कर चिन्ता करने लगा। इस तरह राजा को शोक पूर्ण देखकर जली हुई स्त्री अचानक प्रगट होकर अपने पति के पास खड़ी हो गई। उसे अचानक प्रगट हुई देखकर सब विस्मित होगये। तब राजा ने इन्द्रजालिया से कहा कि आपने यह सब हमको दुःखी करने के लिये क्यों किया। तब उसने जवाब दिया कि हे राजा तेरे को प्रतिबोध देने के लिये इस इन्द्रजाल की रचना की थी। जैसे यह सब इन्द्रजाल असत्य है वैसे ही ये सारे पदार्थ जो दिखाई देते हैं वे सब क्षण भंगुर और नाशवान हैं। यह विशाल राज्य, अनुपम सौन्दर्य वाली मनोहर स्त्रियां सब नाशवान हैं। सब भोगों का त्याग ही सुख को देनेवाला है। यदि हम इनको नहीं छोड़ते तो ये किसी समय हमको छोड़कर दुःख देंगे। इसलिये इन पर मोह करना व्यर्थ है। इंद्रजालिया के ऐसे बचन सुन राजा को ज्ञान हुआ और उसे एक करोड़ सोना मोहर देकर बिदा किया।

महत्व सुना कि जो कोई वय, पर्याय और सूत्रार्थ से वृद्ध हो तथा तपस्वी हो ऐसे मुनि की निष्कपट और निरभिमान होकर भक्ति करता है वह अपनी आत्मा को निर्मल कर उच्च गोत्र का बन्धन कर तीर्थंकर पद को प्राप्त करता है। इस प्रकार गुरू से स्थविर की भक्ति का महत्व सुनकर राजर्षि मुनि ने यह अभिग्रह किया कि जब तक मैं जीऊँगा तब तक निरन्तर ज्येष्ठ अणगार की आहार आदि से भक्ति करने के बाद भोजन करूंगा। यह दृढ़ अभिग्रह लेकर निरन्तर वृद्ध साधुओं की भक्ति करने लगा जिससे सब मुनि उसकी प्रशंसा करते हुए आदर सत्कार करने लगे।

एक दिन देव सभा में इन्द्र महाराज से राजर्षि मुनि की प्रशंसा सुन रत्नांगद सम्यग दृष्टि देव भी प्रसन्न होकर इन्द्र का अनुमोदन करने लगा। परन्तु दूसरे हेमांगद मिथ्या दृष्टि देव को यह बात अच्छी नहीं लगी। इस पर वहाँ से दोनों मनुष्य रूप धारण कर जहाँ राजर्षि मुनि थे वहाँ आये। वहाँ आकर उनमें से एक कहने लगा कि जगत में दुष्कर तप करने वाले, ब्रह्मचारी तथा निर्मल जल में स्नान कर जगल में रहने वाले ममता रहित योगियों को देखकर हृदय प्रफुल्लित होता है और इन शौचाचार रहित बाह्य और अभ्यन्तर से मलीन जैन मुनि को देखते ही अप्रीति उत्पन्न होती है। यह सुनकर दूसरा देव हंसकर बोला हे भाई ! तू मूर्ख मालूम होता है क्योंकि क्षमादिक गुणों से युक्त जैन मुनि को सम्पूर्ण रीति से जाने बिना अज्ञान कष्ट करनेवाले तपस्वियों की तू प्रशंसा

करता है, यह तेरी मूर्खता है। इस एक की निन्दा और दूसरे की स्तुति सुनकर भी राजर्षि मुनि दोनो पर रागद्वेष रहित समभाव से रहे—पीछे वे दोनों देव दूसरा रूप धारण कर एक शिव पंथी तपस्वी के पास आये। उनमें से एक बोला यह तपस्वी पशु को तरह भक्ष्याभक्ष्य का खयाल नहीं रखता और स्त्री रखता है इसलिये इसका तप मिथ्या है। उसके ऐसे वचन सुन तपस्वी क्रोधित हो उसे मारने को दौड़ा तब रत्नांगद देव हेमांगद से कहने लगा कि हे मित्र जैन और शैव मुनि में कितना भेद है यह तुमने देखा। इतने पर भी मिथ्या-दृष्टि देव के हृदय में श्रद्धा नही हुई। इसलिये पुनः उन राजर्षि मुनि पर देवमाया से वहुत से उपसर्ग किये फिर भी करुणासागर मुनि अपने लिए हुए अभिग्रह से चलायमान नहीं हुए। तब वे दोनों देव प्रत्यक्ष प्रगट हो मुनि को नमस्कार कर अपने अपराध की क्षमा याचना कर अपने अपने स्थान पर गये। पद्मोत्तर मुनि ने वृद्ध साधुओं की भाव पूर्वक भक्ति करने से तीर्थंकर नाम कर्म का बंध किया। वहां से काल धर्म प्राप्त कर महा शुक्र देवलोक में देवता हुए। वहाँ से चवकर महा विदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पद प्राप्त कर मोक्ष जावेंगे।

✦✦✦

भव्य प्रतिबोधन में सावधान, अविच्छिन्न वस्तु स्वरूप के उपयोग में दत्तावधान, गुतरा देश, काल, क्षेत्र भावादि विशेष के जानकार, सुगुप्त परहृदयज्ञात, आचार्य से सूत्रार्थ दानाधिकार रूप विशेषाधिकार प्राप्त, और अगणित गुण गण के आधार, अशेष भविकजनों के संशयों को हरनेवाले, सबको धर्म मार्ग में स्थिर करनेवाले, परमपात्र। इस प्रकार के श्री उपाध्यायजी वाचक, पाठक, अध्यापक, सिद्धसाधक, श्रुतवृद्ध, कृतकर्माशिक्षक, दीक्षक, स्थविर, चिरन्तन, परीक्षक, परोश्रम, वृतमाल, साम्य-धारी विदित पदार्थ विभाग, अप्रमादी, सदा निर्विवादी, आत्म-प्रवादी, अद्वयानन्दी इत्यादि नामों से सुशोभित जगद्बन्धु, जगद्भ्राता, जगदुपकारी श्री उपाध्यायजी को प्रति क्षण हमारी वन्दना रहे इत्यादि प्रकार से हर्षित चित से स्तुति करे। इस पद के आराधन में भी यथाशक्ति पौषध करें। श्रद्धा भक्ति से उपाध्यायजी का विनय करें वस्त्र, पात्र, कम्बल, औषध प्रभृति दान करें। मुनिराजजी को चन्दनादि विलेपन करे, उपाध्यायजी का नवांग पूजन करे (अथवा) जिसके पास धर्मशास्त्र पढ़ा हो उनकी यथोचित भक्ति करे, उपकारी का स्मरण करे, सिद्धान्त लिखावें, ज्ञान भण्डार करावें। इस प्रकार उपाध्याय पद का आराधन करने से सर्वेष्ट का लाभ होता है।

इस पद की आराधना नील वर्ण से करें। इस पद की आराधना से महेंद्रपाल राजा तीर्थंकर हुए जिनकी कथा इस प्रकार है।

छट्टे बहुश्रुत पद आराधना पर महेन्द्रपाल की कथा

भरत क्षेत्र में सोपारकपट्टण नगर था, जहां सर्व कलाओं में कुशल महेन्द्रपाल राजा राज्य करता था। परन्तु सद्गुरु के अभाव में मिथ्यात्वियों के बताए हुए रास्ते पर चलता था। वह यह मानता था कि यह आत्मा पंचभूत तत्वों से बनी है और पंचभूत का नाश होने पर आत्मा का भी नाश हो जाता है। कहा है कि:—

विना गुरुभ्यो गुणनीरधिभ्यो, जानाति धर्मं न विचक्षणोऽपि।
आकर्णदीर्घोज्वललोचनोऽपि, दीपं विना पश्यति नांधकारे॥

अर्थः— गुण के समुद्र गुरु बिना समझदार मनुष्य भी धर्म को नहीं जानता। जैसे कान तक लम्बी आंखवाला मनुष्य भी दीपक बिना अंधेरे में देख नहीं सकता।

राजा के एक बुद्धिमान मंत्री था। उस मंत्री के जिन तत्व को जाननेवाला श्रुतशील भाई था। राजा उसे बड़ा प्यार करता था।

एक बार अतिशय स्वरूपवान मातंग की स्त्री को पंचम नाद युक्त गान करती हुई देखकर राजा उस पर मोहित हो गया। राजा के भाव को जानकर श्रुतशील कहने लगा कि महाराज अपयश को देनेवाली पर नारी का जो संग करता है वह नीच गति को प्राप्त कर महा दुःख उठाता है। जैसे सुन्दर,

प्रकार से और सम्यक् क्रिया, ज्ञान व उग्र तप से दुष्कृत्यों की शुद्धि होती है ऐसा ज्ञानी पुरुष कहते हैं।

गुरु की ऐसी देशना सुनकर प्रधान के भाई श्रुतशील को वैराग्य हुवा और उसने चारित्र ग्रहण किया।

श्रुतशील के चरित्र लेने से राजा को गुरु पर द्वेष हुआ। गुरु राजा को प्रतिबोध देकर वहां से विहार कर गये। पीछे एक बार उसी नगर के उद्यान में निर्दोष चारित्र का पालन करने वाले श्रुत केवली भी समंतभद्राचार्य बहुत से साधुओं के साथ वहां आये। उस समय सब पुरवासी और राजा उनको वंदना करने आये। तब गुरु महाराज ने देशना दी।

'हे भव्यजनों! मदोन्मत्त हाथी, प्रचंड वेगवान घोड़े, विशाल राज्य लक्ष्मी, सुन्दर रूप, उत्तम वीर्य, मृगलोचनी सुन्दर स्त्री आदि भोगोपभोग्य वस्तुओं की प्राप्ति धर्म के प्रभाव से ही प्राप्त होती है। जो सुज्ञ शिरोमणि जिनेश्वर के कहे धर्म में रुचि रख दूसरों को भी प्रेरणा देता है वह प्राणी सुख सम्पदा को प्राप्त करता है; और जो मूढ आत्मा जिनेश्वर के धर्म को माननेवाले का अनादर कर उन पर द्वेष करता है वह अनेक प्रकार के दुःखों को प्राप्त करता है। इसलिये जहां तक यह देह निरोग है, इन्द्रियां काम करती है, जरावस्था दूर है वहां तक धर्म कार्य में लगे रहने का यत्न करो।

ऐसी वैराग्य पूर्ण गुरु देशना श्रवण कर राजा ने जयन्त-कुमार को राजसिंहासन पर बैठा मंत्री सहित गुरु के पास से चारित्र ग्रहण किया। धीरे २ गुरु के पास रहकर ग्यारह अंग

का अध्ययन किया । एक दिन गुरुमुख से बीस स्थानक की आराधना सम्बन्धी देशना श्रवण करते हुए ऐसा सुना कि बीस स्थानकों में से एक भी स्थानक की सम्यक प्रकार से आराधना करने से तीर्थंकर पदवी मिलती है। वह गुरु वचन सुनकर राजर्षि मुनि ने अभिग्रह लिया कि जहां तक जीऊंगा वहाँ तक बहुश्रुत की सेवा करूंगा । ऐसा अभिग्रह लेकर बहुश्रुत मुनियों की औषध भैषज आदि से वैयावच्च करते हुए अभिग्रह का दृढ़ता से पालन करने लगा ।

एक दिन देवसभा में इन्द्र महाराज ने उन मनि की प्रशंसा की । उस पर शंकित हो धनददेव जहां मुनि थे उस नगरी में आ सेठ बनकर रहने लगा। उस समय वे राजर्षि मुनि किसी बीमार साधु के लिये कोलापाक की तलाश में कपट रूप सेठ के घर आ धर्म लाभ देकर खड़े हुए । मुनि को देख कपटी सेठ खड़ा होकर प्रणाम कर मीठे वचनों से बोला कि आज मेरा धन्यभाग्य है कि आपने पधार कर मेरा घर पवित्र किया। हे पूज्य कहिये आपको क्या चाहिये ?

मुनि ने कहा—हे महाभाग मुझे कोलापाक की जरूरत है। यदि तुम्हारे पास हो तो दो ।

सेठ ने कहा महाराज मेरे घर में कोलापाक जितना चाहिये उतना है। आप ठहरिये मैं अभी लाता हूँ। ऐसा कह अन्दर से कोलापाक लाकर मुनि को देने लगा। मुनि ने उसे अनिमेष नेत्रवाला देख सोचा कि यह तो कोई मायावी देव है और देवपिंड मुनि ग्रहण करते नहीं । ऐसा सोच पाक लिए बिना

वहां से दूसरी जगह चले गए। इससे वह देव क्रोधित हो जहां २ मुनि जाते वहां २ पाक को अशुद्ध कर देता। फिर भी मुनि को खेद नहीं हुवा। बहुत घर फिरते २ सूर सार्थवाह के यहां मुनि गये। वहां उसे शुद्ध पाक मिला। वहां से पाक लेकर मुनि अपने स्थान पर गये। इस तरह मुनि को अपने अभिग्रह में निश्चल देख देव ने प्रगट हो मुनि को स्तवन कर सूर सार्थवाह के घर रत्नों की वृष्टि कर अपने स्थान पर गया। बहुश्रुत की भाव पूर्वक सम्यक प्रकार से सेवा करने से मुनि ने तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया। वहां से काल धर्म प्राप्त कर नवमें देवलोक में देवता हुए। वहां से चव महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पद पाकर मोक्ष प्राप्त करेंगे। श्रुतशील मुनि का जीव उन्ही तीर्थंकर के गणधर होकर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

इस प्रकार महेन्द्रपाल नृपति का चरित्र श्रवण कर हे भव्यजीवों तुम भी बहुश्रुत की भक्ति करने के लिये प्रयत्न करो।

◆◆◆

सप्तम साधु पद आराधन विधि

"ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं" इस पद की २० माला गिनें।

साधु के २७ गुण होते हैं इसलिये इस पद के २७ खमासमण नीचे लिखे माफिक देना। प्रत्येक खमासमण से पूर्व यह दोहा बोलना।

दोहा

स्याद्वादगुण परिणम्यो, रमता समता संग।
साधे शुद्धा नन्दता, नमो साधु शुभ रंग॥

१ पृथ्वीकाय रक्षकेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः
२ अपकाय रक्षकेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः
३ तेजकायः रक्षकेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः
४ वायुकाय रक्षकेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः
५ वनस्पतिकाय रक्षकेभ्यः सर्व सांधुभ्यो नमः
६ त्रसकाय रक्षकेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः
७ सर्वतः प्राणातिपात विरतेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः
८ सर्वतः मृषावाद विरतेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः
९ सर्वतोऽदत्तादान विरतेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः
१० सर्वतो मैथुनात् विरतेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः
११ सर्वतः परिग्रहात् विरतेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः
१२ सर्वतो रात्रि भोजनात् विरतेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः

१३ क्रोधादि कषाय चतुराक निग्रहकेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः
१४ श्रोत्रेन्द्रिय विषय निग्रहकेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः
१५ चक्षुरिन्द्रियविषय निग्रहकेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः
१६ घ्राणेन्द्रिय विषय निग्रहकेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः
१७ रसनेन्द्रिय विषय निग्रहकेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः
१८ स्पर्शनेन्द्रिय विषय निग्रहकेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः
१९ शीतादि परीषह सहकेभ्य. सर्व साधुभ्यो नमः
२० क्षमादि गुण धारकेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः
२१ भावविशुद्धेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः
२२ मनोयोग शुद्धेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः
२३ वचन योग शुद्धेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः
२४ काययोग शुद्धेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः
२५ मरणांत उपसर्ग सहकेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः
२६ अङ्गोपाङ्ग संकोचन संलीनता गुणयुक्तेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः
२७ निर्दोष संयम योग युक्तेभ्यः सर्व साधुभ्यो नमः

उक्त खमासमण देकर २७ लोगस्स का कायोत्सर्ग करना।

स्तुति

साधु मुनिराज, पंच समिति समता, त्रिगुप्ति गुप्ता, पृथि-व्यादि छ काय के रक्षक, गुणगणो कुलगह, सदा शुद्धात्म,

स्वपरिणति में रमण करनेवाले, अशुद्ध परपरिणति का त्याग करनेवाले, इन्द्रिय गण को दमनकार, सर्व परीषह उपसर्गादिक क्षमा सहित क्षमता, नये नये दुष्कर अभिग्रह धारक, अप्रतिबद्ध विहारकारक, रत्नावली, कनकावली, मुक्तावली, मुक्ताकण्ठाभरण गुणरत्न संवत्सर प्रमुख दुष्कर तप करनार, आगमाज्ञाजित प्रमुख व्यवहार में विचरते, पंचविशुद्ध शुभ का आचरण करते, दंभदोष को त्याग करते, प्रतिक्षण समता स्थाने स्थित रहते, मर्यादि को नित्य त्यागते, भ्रमण करते, प्रतिक्षण नूतन नूतन योग साधन में निरत, प्रतिदिन नये नये शास्त्रों का अध्ययन करते, तृण मणि हार अहिरत्न पाषाण आदि सब अनुकूल प्रतिकूल वस्तु को समान गिनते, तीव्र श्रद्धापूर्वक आगम रूप कुठार से संशयवन को छेदन करनेवाले, मोहशत्रु का पराजय करनेवाले, एक प्रकार से श्रीजिनाज्ञा को पालते सर्वतः असंयम को हटानेवाले, द्विविध धर्म के उपदेशक, राग-द्वेष बन्ध को दूर करनेवाले, त्रिविधि रत्नत्रयो के धारक, दुष्ट मनोयोगादि दण्डत्रय दूरकारक, चतुर्विध देशना के दाता, क्रोधादि चतुर्विध चतुष्कषायके घातक, पंचविध महाव्रतधारी पञ्च प्रमाद दूरकारी, विविध काय प्रतिपालक, अन्तरंग छ शत्रुओं के नाशक, सप्तविध नय देशना के दाता, सप्त महाभय के त्राता, अष्टविध अष्टांग योग साधक, जात्यादि अष्टमद स्थान के जेता, नवविधि ब्रह्मगुप्ति धारक, दवादि नवनिदान परिहारी, दशविध यतिधर्मधारी, जिन्होंने दश दोषों को शोधन किया है वह, अगणित गुणगणालंकृतगात्र, सप्तविंशति गुणयुक्त ऐसे महात्मा, महानन्द, शिवार्थी, सन्यासी, भिक्षु, निर्ग्रन्थो,

पुरुष सुसराल में और स्त्री पीयर में ज्यादा रहते हैं वे अपनी शोभा व लाज खोते है। इसलिये अब मुझे यहां ज्यादा नही रहना चाहिये। परदेश जाकर द्रव्य सचय कर पिता के घर जाना ज्यादा अच्छा है। यह विचार उसने अपनी स्त्री को बताया और कहा कि तुझे छोड़कर जाना मुझे अच्छा नही लगता है परन्तु विना काम श्वसुर के घर रहना भी मुझे अच्छा नहीं लगता। इसलिये परदेश धन कमाकर आऊँ तब तक तू पिता के घर रह। मैं थोड़े दिन में आकर अपने पिता के घर ले जाऊँगा। इस प्रकार समझाकर और उसकी स्वीकृति ले अपने भाग्य की परीक्षा करने निकल पडा। घूमते २ वह सिंहल द्वीप पहुँचा। वहां किसी दिव्य गुटिका के प्रभाव से रूप बदल कर नगर में नाना प्रकार की कलाएँ करता हुवा घूमने लगा जिससे नगर के लोग उसे प्यार करने लगे।

एक दिन घूमते २ वीरभद्र उस नगर के शख सेठ की दुकान पर जाकर बैठा। सेठ उसे गुणवान, रूपवान, और बलवान देख आदर पूर्वक घर लाया और पुत्र की तरह रखा। अब वीरभद्र सुख पूर्वक रहने लगा।

उस नगर के रत्नाकर राजा की महा गुणवान, सब कलाओं में निपुण, अत्यत रूपवती अनंगसुदरी पुत्री थी। उसकी सेठ की पुत्री के साथ मित्रता थी। उससे राजकुमारी की प्रशंसा सुन वीरभद्र की इच्छा उसे देखने की हुई इसलिये उसने सेठ की पुत्री से कहा। सेठ की पुत्री ने कहा कि वहां स्त्रियों के सिवाय किसी को जाने का हुक्म नहीं है इसलिये कैसे बताऊँ।

वीरभद्र ने कहा इसमें क्या है ? ऐसा कह गुटिका के प्रभाव से वह सुन्दर नव यौवना कन्या बन गई। इस प्रकार रूप परिवर्तन कर सेठ की पुत्री के साथ राजमहल में राजकन्या के पास आया। नई स्वरूपवान अपरिचित महिला को देख राजकुमारी बोली हे सखी तेरे साथ देव सुन्दरी समान यह कन्या कौन है।

सेठ की पुत्री ने कहा—बहिन यह मेरे मामा की पुत्री है। हमारे घर थोड़े दिन के लिये मिलने आई है। इसे वीणा बजाना बहुत अच्छा आता है इसलिये मैं तुम्हारे पास लाई हूं। तुम अपनी वीणा इसे दो। देखो यह कैसा मधुर गाती है। राजकन्या ने अपनी वीणा उसे दी। कृत्रिम कन्या ने वीणा हाथ में लेकर इस तरह बजाई कि उसके संगीत, ताल, आलाप को सुनकर राजकुमारी अत्यन्त प्रसन्न हो कहने लगी कि बहिन तुम निरन्तर मेरे पास ही रहो तो ठीक है, क्योंकि तुमको देख मेरे मन में अत्यन्त प्रीति उत्पन्न हुई है।

राजकन्या के आग्रह से कृत्रिम कन्या वहां आनन्दपूर्वक विविध प्रकार से विनोद करती हुई रहने लगी। इस तरह दोनों का मन एक हो गया।

एक दिन कृत्रिम कन्या ने राजकुमारी से कहा कि हे सखी तू अब यौवनावस्था में पहुँच गई है इसलिये यदि तुझे तेरे रूप गुण समान पति मिल जाय तो अच्छा है।

राजकुमारी ने कहा—हे सखी सब को अच्छे वर की इच्छा होती है। कोई बुरे को नहीं चाहता। परन्तु इसमें अपनी

अर्थः—स्त्री मदिरा से भी ज्यादा गुण करनेवाली तथा इस लोक और परलोक को बिगाड़ने वाली है एवम् देखने मात्र से जगत को पागल कर देती है। अर्थात् मदिरा पीने के बाद मनुष्य मस्त होता है परन्तु दोनों लोक को बिगाड़ने वाली स्त्री तो मदिरा से भी अधिक मादक गुणवाली है कि जिसे देखते ही जगत पागल हो जाता है।

जिस तरह आग के पास रहने से लाख एक क्षण में नाश हो जाती है उसी तरह समीप रहनेवाले ब्रह्मचारी का शील भी थोड़ी देर में नष्ट हो जाता है। ऐसा विचारकर वह तापस अनंगसुन्दरी से कहने लगा कि हे पुत्री मैं तुझे पास के पद्मिनी खंड नाम के नगर के पास छोड़ आता हूं। वहां से तू तेरा उचित स्थान ढूंढ लेना। तेरे पुन्य से तुझे वहां अच्छा स्थान ही मिलेगा और तू सुखी होगी। तुझे अपने पास बहुत दिनों तक रखना लाभदायक नहीं है क्योंकि इससे मेरी अपकीर्ति होगी। ऐसा कह अनंगसुन्दरी को नगर के समीप छोड़कर तापस पीछा अपने आश्रम में आ गया।

भीड़ भाड़ से घबराकर अनंग सुन्दरी घूमती २ नगर के पास वाले सरोवर पर आई। वहां उसने पुण्यात्मा सुव्रता साध्वी को देखी। उसे देख हर्ष से उनके पास जा विनयपूर्वक वंदन कर दोनों हाथ जोड़ खड़ी रही। साध्वी ने धर्मलाभ दे मधुर वचन से पूछा पुत्री तू किसकी पुत्री और किसकी स्त्री है।

राजकुमारी ने अपना सारा वृतान्त कह सुनाया। साध्वी उसे पौषधशाला में ले गई। उसी समय सागरदत्त सेठ को

पुत्री और वीरभद्र की स्त्री वहां पढ़ने आई । उसने उस अप्सरा समान रूपवती स्त्री को देख गुरुणीजी महाराज से पूछा कि यह स्त्री कौन है ।

साध्वी ने कहा यह स्त्री सिंहल द्वीप के राजा की पुत्री और वीरभद्र सेठ की पत्नी है । दुर्दैववशात यह अपने पति से अलग हो गई है ।

यह सुनकर प्रियदर्शना बोली अरे यह तो मेरी सपत्नी—मेरी बहन है । ऐसा कह मीठे वचनों से उसे धीरज बंधा अपने पिता के घर लाकर स्नेह सहित बड़े आदर से रखी । दोनों गुरू के पास श्रुताभ्यास व विविध तपस्या करती शुद्ध चित्त से निर्मल शील का पालन करने लगी । सागरदत्त सेठ भी अनंग सुन्दरी को अपनी दूसरी पुत्री की तरह मानता और जरा भी फर्क नहीं समझता ।

प्रिय पाठक ! अब वीरभद्र का क्या हुवा सो देखें । जब भयंकर तूफान से नाव टूटी और जिस तरह अनंग सुन्दरी के हाथ मे एक लकड़ी का तख्ता आया उसी तरह वीरभद्र के हाथ में भी एक तख्ता आया । उसके सहारे सात दिन में वह समुद्र के किनारे आकर बाहर निकला । परन्तु स्त्री के वियोग से किसी भी जगह उसे सुख शांति नहीं मिली । अस्वस्थ चित्त से इधर उधर फिरने लगा । इतने में वहां रत्नपुर नगर का स्वामी रत्नवल्लभ विद्याधर क्रीड़ा करता आ पहुँचा । वह वीरभद्र को व्याकुल देख बहुमान पूर्वक अपने साथ नगर में ले आया । वहां उसने अपनी पुत्री रत्नप्रभा का उसके साथ

उत्साहपूर्वक ब्याह कर गगन गामिनी तथा आभोगिनी विद्या सिखलाकर विद्याधर बनाया। सच है पुण्यशाली को जगह २ संपत्ति और सुख प्राप्त होता है।

कुछ समय बीतने पर एक दिन आभोगिनी विद्या के प्रभाव से निर्मल शीलयुक्त अपनी पूर्व की दो पत्नियों को सुव्रता साध्वी के पास पद्मिनी खंड नगर में शास्त्राभ्यास करती देखी। वह अपनी नव विवाहिता पत्नी को लेकर उस नगर में आया। वहां आकर स्त्री को सुव्रता साध्वी के उपाश्रय के पास छोड खुद मल त्याग के बहाने वहां से चला गया। कुछ समय व्यतीत होने पर जब पति वापिस नहीं आया तो रत्नप्रभा चिंता करती हुई वहां से उठकर सुव्रता साध्वी के उपाश्रय में जहां पूर्वोक्त दो स्त्रियां पढती थी चली गई। उनके पास बैठकर अपना हाल सुनाया। उन्होंने उसे भी अपने पास रख ली। अब तीनों किसी अन्य पुरुष से बात किए बिना निरन्तर देवपूजा, प्रतिक्रमण पौषध आदि धर्म क्रिया करने लगी।

वीरभद्र अपनी स्त्री को छोड़ वामन रूप धारण कर सुलक्षण नाम धारण कर विविध प्रकार के कौतुक कर लोगों को प्रसन्न करता हुआ घूमने लगा। एक दिन इस प्रकार घूमता २ राजा की सभा में चला गया। वहां उस सभा में कोई पुरुष यह कह रहा था कि अपने नगर में सुव्रता साध्वी के उपाश्रय में अप्सरा के रूप के समान तीन सती स्त्रियां है वे ऐसी दृढ़ नियमवाली है कि पर पुरुष के सामने भी नहीं देखती

तो फिर उनके साथ बातचीत करना तो दूर की बात है । वे व्रती स्त्रियां नवयौवना होने पर भी जितेन्द्रिय हैं ।

ऐसी बात सुन राजा आश्चर्यान्वित हो बोला कि जो कोई पुरुष उन तीन स्त्रियों से बातचीत करेगा वह मेरा कृपा भाजन बनेगा ।

राजा की आज्ञा सुनकर सभा में बैठे हुए किसी भी आदमी ने कुछ नहीं कहा । इतने में वहां आये हुए वामन पुरुष ने प्रणाम कर कहा कि महाराज में अपनी कला से उनसे बात कर सकूंगा ।

वामन की बात सुन राजा बोला कि चलो, अभी चलो । पीछे सब सभासदों सहित राजा वामन को ले सुव्रता साध्वी के उपाश्रय में आकर आर्या की वंदना कर सब लोग अपने २ उचित स्थान पर बैठ गये । पीछे राजा की आज्ञा ले वामन बोला कि हे सभासदों में एक आश्चर्यजनक कहानी कहता हूं सो सुनो । यह कह निम्न प्रकार कहना शुरू किया ।

विशालापुरी में रहनेवाले वृषभदास सेठ के वीरभद्र पुत्र था । उस वीरभद्र ने पद्मिनी खण्ड नगर में रहने वाले सागरदत्त सेठ की कन्या प्रियदर्शना के साथ शादी की । कुछ दिन उसके पास रह उसे वहीं छोड़कर परदेश चला गया । ऐसा कह वह चुप होगया । अपने पति की बात सुन प्रियदर्शना बोली बताओ पीछे वे कहां गये ।

प्रियदर्शना को बोलती देख वामन बोला तीन में से एक स्त्री तो बोली अब बाकी बात कल कहूंगा ।

दूसरे दिन फिर सब उपाश्रय में गये और वामन ने फिर कहना शुरू किया कि प्रियदर्शना को छोड़ वीरभद्र घूमता २ सिंहलद्वीप गया। वहां के राजा की रूपवती कन्या अनंगसुन्दरी के पास दिव्य गुटिका के प्रभाव से स्त्री रूप बनकर गया और वीणा बजा सुनाकर उसके साथ ब्याह किया। वहां से नाव में बैठकर अपने घर के लिये रवाना हुआ। दुर्भाग्य से नाव टूट गई और सब समुद्र में गिर पड़े। इतना कह चुप होगया। इतने में राजपुत्री अनंगसुन्दरी बोली कि हे कला कुशल जल्दी बताओ पीछे कुमार का क्या हुआ। इस तरह दूसरी स्त्री को बोलती देख वामन ने सभासदों से कहा कि देखा दूसरी स्त्री भी बोल गई। अब बाकी बात कल बताऊँगा।

तीसरे दिन पुनः सब उपाश्रय में इकट्ठे हुए। वामन ने कहना शुरू किया कि नाव टूट जाने पर वीरभद्र के हाथ एक लकड़ी का तख्ता लगा। उसके सहारे सात दिन में वह समुद्र के किनारे पहुँचा। वहां से रत्नवल्लभ विद्याधर नगर में लेगया और अपनी पुत्री रत्नप्रभा का विवाह उसके संग कर दिया और दो विद्या उसे सिखाकर विद्याधर बनाया। एक दिन अपनी स्त्री रत्नप्रभा को लेकर वीरभद्र इस नगर में आया और उसे किसी जगह छोड़ कहीं चला गया। इतना कह वह चुप होकर बैठा रहा। इतने में रत्नप्रभा अधीर होकर पूछने लगी कि हे वामन जल्दी बताओ पीछे क्या हुवा और वे कहां गये और तुझे यह सारा हाल कैसे मालूम हुवा। वामन बोला

कि मैं यह हाल अपने ज्ञान से जानता हूं। उस ज्ञान से स्वर्ग, पाताल और मनुष्य लोक की सब बातें जान सकता हूँ।

रत्नप्रभा ने कहा कि यदि तू ज्ञानी है तो कृपा कर हमारे पति को बता, तेरा कल्याण होगा।

वामन बोला कि मेरी शक्ति से उसे अभी हाजिर करता हूँ। अभी यहां एक कपड़े की कुटी बना कर उसमें जाप करने के लिये एक आसन रखो और फिर देखना एक क्षण में क्या होता है ?

पीछे वामन के कहे अनुसार कपड़े की एक कुटि बनाई और उसमें आसन रखा। सब लोगों को आश्चर्य में डालने के लिये वह जाप करने के बहाने अन्दर जा अपना असली रूप प्रकट कर तुरन्त बाहर आया। उसे देख सब आश्चर्य करने लगे। प्रियदर्शना के माता पिता को खबर मिलते ही वे हर्षित होकर आये व बड़े स्नेह पूर्वक मिले। इसके बाद वीरभद्र तीनों स्त्रियों सहित वहां रहने लगा।

कुछ समय बाद नगर के उद्यान में त्रैलोक्यपति अठारहवें तीर्थंकर श्री अरहनाथ प्रभु पधारे। देवों ने समवसरण की रचना की। उसमें बारह पर्षदाएँ भगवान की देशना सुनने के लिये योग्य स्थान पर बैठीं। उनमें वीरभद्र भी अपनी स्त्रियों और सास श्वसुर के साथ आकर विनय पूर्वक प्रदक्षिणा दे उचित स्थान पर बैठ गया। भगवान ने सर्वभाषानुगामी वाणी से अमृतधारा के समान धर्म देशना दी। भगवान की देशना सुन

कुछ हलु कर्मी जीव सर्व विरति हुए और कुछ देश विरति हुए।
देशना पूर्ण होने पर भगवान के चरणों में नमस्कार कर
सागरदत्त सेठ बोला हे करुणा निधान ! लोकालोक प्रकाशक,
अनन्त ज्ञान को धारण करनेवाले ! मिथ्यात्व रूप
अंधकार को नाश करने के लिए सूर्य के समान! हे जगतबन्धु!
आप कृपा कर यह बताइये कि वीरभद्र ने पूर्वभव में क्या
सुकृत्य किया था ?

भगवान ने कहा हे सेठ तू वीरभद्र का पूर्व भव सुन।
रत्नपुर नगर में निर्धन होते हुए भी व्यवहार से आजीविक
चलानेवाला जिनदास श्रावक था। उसके यहां एक दिन
चौमासी तप के पारणे के निमित्त भगवान अनन्तनाथ पधारे।
उसने उन्हें भक्तिपूर्वक बड़े आदर से शुद्ध आहार दिया। उस
आहार के प्रभाव से उसके घर देवों ने बारह करोड़ सोना
मोहरों की वृष्टि की। इससे वह धनवान हुवा। दानार्जित
पुण्य के प्रभाव से वहां से मृत्यु पाकर वह जिनदत्त ब्रह्मलोक
में महान् संपत्तिवाला देव हुवा। वहां से चव यह वीरभद्र
रूप में उत्पन्न हुआ। थोड़ा भी श्रद्धापूर्वक सुपात्र को दिया
हुआ दान बहुत प्रकार के फल को देनेवाला होता है।

अपने पूर्व भव को सुन वीरभद्र दोनों हाथ जोड़ बोला हे
त्रैलोक्य तारण कृपासिंधु अब मेरा आयुष्य कितना बाकी है यह
कृपा कर बताओ।

जिनेश्वर ने कहा हे वीरभद्र अभी तू दान के प्रभाव से

तीन सौ वर्ष तक नाना प्रकार के सुख भोगेगा। फिर भोग कर्म का अन्त होने पर तेरे को चारित्र का उदय आवेगा।

जिनेश्वर के वचन सुन वीरभद्र वीतराग को नमस्कार कर सास श्वसुर सहित घर आया। बहुत दिनों तक नाना प्रकार के भोग भोगता, देव पूजा, स्वामी वात्सल्य आदि धर्म कार्य करता वहीं रहने लगा। पीछे सब की आज्ञा ले अपनी तीनों स्त्रियों और अन्य परिवार सहित अपने नगर में आया। माता पिता पुत्र को तीन वधुओं और अपार धनराशि सहित कुशलक्षेम आया देख बड़े हर्ष पूर्वक मिले और दीर्घकाल के वियोग को भूल गये। वीरभद्र ने माता पिता के चरण छुये। बहुओं ने भी सास को नमस्कार किया। सास ने आशीर्वाद दिया। दीर्घकाल के वियोग दूर होने से सारा कुटुम्ब आनन्दित हुवा। घर पर आने के बाद वीरभद्र ने माता पिता को अष्टापद, सम्मेदशिखर, आदि तीर्थों की यात्रा कराई। समय पाकर उसके माता पिता अनशन कर देवलोक गये। वीरभद्र ने अनेक दुखियों के कष्ट दूर कर द्रव्य का सदुपयोग किया। नगर में एक विशाल और सुन्दर जिन चैत्य बनवाया। इससे सब जगह उसकी कीर्ति फैल गई। नगर के राजा ने भी उसे नगर सेठ की पदवी प्रदान की। कुछ दिन बीतने पर तीनों स्त्रियों के एक २ पुत्र हुआ। उनके वीरदेव, वीरदत्त, और वीरचंद नाम रखे। चन्द्रकला की तरह तीनों यौवनावस्था में पहुंचे। अब वीरभद्र के भोगावली कर्म पूर्ण होने से उसने अपनी तीनों स्त्रियों और दूसरे पांच सौ सेठों के साथ चन्द-

सागर गुरु के पास से चारित्र अङ्गीकार किया। निरतिचार से संयम का पालन करता, दुस्तर तपस्या करता व ज्ञानामृत का श्रवण करता हुआ गुरु के साथ विचरण करने लगा।

एक दिन गुरु के मुंह से सुना कि जो विषय सुखों को त्याग करनेवाले तथा दुष्कर तपस्या करनेवाले तपस्वियों की भावपूर्वक भक्ति करता है उन्हें तीर्थंकर पद प्राप्ति होती है।

इस प्रकार तपस्वियों की भक्ति का महत्त्व सुन वीरभद्र मुनि ने अभिग्रह लिया कि आज से मैं निरन्तर तपस्वियों की भक्ति करूंगा। इस प्रकार वह औषध भैषज्यादि से निरन्तर तपस्वियों की दृढ़ता पूर्वक भक्ति करने लगा।

एक समय गुरु के साथ विहार करते वे शालीग्राम में आये। वहां कोई देवता वीरभद्र मुनि की परीक्षा करने के लिये एक मास के उपवासी साधु का रूप बनाकर आया और पारणा करवाने की इच्छा प्रकट की। उसे तपस्वी समझ कर आसन दिया और गुरु के पास बिठाकर वीरभद्र मुनि उसके पारणे के लिये नदी को पार कर नगर में गोचरी लेने गये। गोचरी लेकर वापिस आये तो क्या देखते हैं कि नदी में प्रबल बाढ़ आई हुई है। जल प्रवाह को देख मुनि स्थिर हो किनारे खड़े रहे। इतने में लोगों ने कहा महाराज इस नदी का जल प्रवाह अभी एकदम कम नहीं होगा इसलिये आप कुछ देर

किसी के घर में रहकर आहार करो। जल प्रवाह कम होने पर विहार करना।

लोगों के वचन सुन वीरभद्र मुनि मन में विचार करने लगे कि मासोपवासी मुनि और गुरू को आहार कराये बिना में कैसे आहार कर सकता हूँ। बड़े भाग्य से जो तपस्वी मुनि आये, वे भूखे होंगे और नदी में बाढ़ आने से मैं पुण्यहीन वहाँ नहीं जा सकता। पुण्य के योग से ही छत्तीस गुणों से सुशोभित, दुष्कर तप करनेवाले नवकल्पी विहार करनेवाले, और धर्म देशना देनेवाले गुरू का संयोग मिलता है।

इस प्रकार मुनि शुभ ध्यान पूर्वक भावना कर रहे थे कि इतने में वह देव वहाँ प्रगट हो नमस्कार कर कहने लगा कि मुनि आपको धन्य है, तपस्वी साधु पर आपकी अनन्य और निश्चल भक्ति है। आपकी परीक्षा करने के लिये नदी में बाढ़ लाकर अपराध किया उसके लिये क्षमा करेंगे। ऐसा कह नदी के प्रवाह को दूर कर गुरू के पास आकर पूछने लगा कि हे प्रभो इस मुनि को ऐसी भावना से क्या फल मिलेगा। गुरू ने कहा इस भावना से यह मुनि आगामी काल में तीर्थंकर होंगे। इसलिये कहा है कि:—

मंत्रे तीर्थे गुरौ देवे, स्वाध्याये भैषजे तथा।
यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी॥ १॥

अर्थः—मंत्र, तीर्थ, गुरू देव, स्वाध्याय तथा औषध के बारे में जैसी जिसकी भावना होती है उसे वैसी ही सिद्धि होती है।

गुरु से यह सुन देव प्रसन्न हो देवलोक को चला गया। पीछे वीरभद्र मुनि ने आकर गुरु को आदरपूर्वक पारणा कराया। इस तरह निरन्तर तपस्वियों की भक्ति कर वहा से काल धर्म पा बारहवें अच्युत कल्प में महा समृद्धिवान देव हुए। वहां से चय महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पद प्राप्त कर अनेक जीवों का उपकार कर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

अष्टम ज्ञान पद आराधन विधि

"ॐ नमो नाणस्स" इस पद की २० माला गिने।

इस पद के ५१ खमासमण नीचे लिखे माफिक देना। प्रत्येक खमासमण से पूर्व यह दोहा बोलना।

दोहा

अध्यात्म ज्ञाने करी, विघटे भव भ्रम भीति।
सत्य धर्म ते ज्ञान छे, नमो नमो ज्ञान नी रीति॥

१ श्रोतेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रहाय मतिज्ञानाय नमः
२ चक्षुरिन्द्रिय व्यञ्जनावग्रहाय मतिज्ञानाय नमः
३ घ्राणेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रहाय मतिज्ञानाय नमः
४ रसनेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रहाय मतिज्ञानाय नमः
५ स्पर्शनेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रहाय मतिज्ञानाय नमः
६ श्रोत्रेन्द्रिय अर्थावग्रहाय मतिज्ञानाय नमः
७ चक्षुरिन्द्रिय अर्थावग्रहाय मतिज्ञानाय नमः
८ घ्राणेन्द्रियअर्थावग्रहाय मतिज्ञानाय नमः
९ रसनेन्द्रिय अर्थावग्रहाय मतिज्ञानाय नमः
१० स्पर्शनेन्द्रिय अर्थावग्रहाय मतिज्ञानाय नमः
११ श्रोत्रेन्द्रिय इहा सम्यग् मतिज्ञानाय नमः
१२ चक्षुरिन्द्रिय इहा सम्यग् मतिज्ञानाय नमः
१३ घ्राणेन्द्रिय इहा सम्यग् मतिज्ञानाय नमः

१४ रसनेन्द्रिय इहा सम्यग् मतिज्ञानाय नमः
१५ स्पर्शनेन्द्रिय इहा सम्यग् मतिज्ञानाय नमः
१६ मन इहा सम्यग् मतिज्ञानाय नमः
१७ श्रोत्रन्द्रियापाय सम्यग् मतिज्ञानाय नमः
१६ घ्राणेन्द्रियापाय सम्यग् मतिज्ञानाय नमः
२० रसनेन्द्रियापाय सम्यग् मतिज्ञानाय नमः
२१ स्पर्शनेन्द्रियापाय सम्यग् मतिज्ञानाय नमः
२२ मनोउपाय सम्यग् मतिज्ञानाय गमः
२३ श्रोत्रेन्द्रिय धारणाय मतिज्ञानाय नमः
२४ चक्षुरिन्द्रिय धारणाय मतिज्ञानाय नमः
२५ घ्राणेन्द्रिय धारणाय मतिज्ञानाय नमः
२६ रसनेन्द्रिय धारणाय मतिज्ञानाय नमः
२७ स्पर्शनेन्द्रिय धारणाय मतिज्ञानाय नमः
२८ मनो धारणाय मतिज्ञानाय नमः
२६ अक्षरश्रुत ज्ञानाय नमः
३० अनक्षरश्रुत ज्ञानाय नमः
३१ संज्ञिश्रुत ज्ञानाय नमः
३२ असंज्ञि श्रुतज्ञानाय नमः
३३ सम्यक्श्रुत ज्ञानाय नमः
३४ मिथ्यात्वश्रुत ज्ञानाय नमः
३५ सादिश्रुत ज्ञानाय नमः

३६ अनादिश्रुत ज्ञानाय नमः
३७ सपर्यव सितश्रुत ज्ञानाय नमः
३८ अपर्यव सितश्रुत ज्ञानाय नमः
३९ गमिकश्रुत ज्ञानाय नमः
४० अगमिकश्रुत ज्ञानाय नमः
४१ अङ्गप्रविष्टश्रुत ज्ञानाय नमः
४२ अनङ्गप्रविष्ट श्रुत ज्ञानाय नमः
४२ आनुगामिक अवधि ज्ञानाय नमः
४३ अनानुगामिक अवधि ज्ञानाय नमः
४५ वर्धमान अवधि ज्ञानाय नमः
४६ हीयमान अवधि ज्ञानाय नमः
४७ प्रतिपाति अवधि ज्ञानाय नमः
४८ अप्रतिपाति अवधि ज्ञानाय नमः
४९ ऋजुमति मनःपर्यव ज्ञानाय नमः
५० विपुलमति मनःपर्यव ज्ञानाय नमः
५१ लोकालोक प्रकाशक केवल ज्ञानाय नमः

उपरोक्त खमासमण देकर ५१ लोगस्स का कायोत्सर्ग करे।

स्तुति

जगत में ज्ञान के बिना अनादि काल की (अज्ञानता मूल नहीं देवत्व की भूल (अज्ञान

अज्ञानता के वश कुदेव को देवतुल्य मानते हैं जैसे कि राग द्वेष से भरे भुवनपति प्रभृति देवों को ही साधारणजन मुक्ति दायक मानते है। किन्तु विचारने की बात है कि जो देव स्वयं मुक्ति नहीं पाता वह दूसरों को मुक्ति कैसे दे सकेगा इसलिये जो मुक्ति को प्राप्त है और जो काम, क्रोध, लोभ, राग, द्वेप, मोह, अज्ञान रहित हैं, वे ही आराधनीय देव हैं। भुवनपति प्रभृति देवों में काम, क्रोधादिक दोप भरे हैं इसलिये इनकी मुक्ति कहां से हो सकती है। देव वह है जो अठारह दोप को नाश करे और अठारह गुण को प्रगट करे। अनन्त गुणों का आकर राग द्वेप अज्ञान से रहित यथार्थवादी चौसठ इन्द्रों द्वारा पूज्य हो, वह देवाधिदेव अरिहंत परमात्मा मुक्तिदायक देव है। ऐसी भूल (अज्ञानता) सम्यग् ज्ञान के बिना नहीं मिट सकती। यह देवतत्व की भूल हुई ॥ १ ॥ गुरुतत्व भूल दिखाते हैं—जो सकल जीव को हित ग्रहण करावे, शुद्ध मार्ग दिखलावे, शुद्ध प्रवृत्ति का आदर करावे, निराम्भवृत्ति से वर्ते, कंचन कामिनि के त्यागी, पादचारी, लकड़ी की नौका के समान अपनी तरह दूसरों को भी तारे वह गुरु कहलाने योग्य है। कुगुरु जो हृष्ट पुष्ट, मस्त, विपय कपाय से आसक्त है और अठारह पापस्थान का सेवन करनेवाला, कंचन कामिनि का भोगी, पाप स्थान का उपदेश करनेवाला, पौद्‌गलिक स्वार्थ की बात बनानेवाला, लोह नाव के समान अपने डूबते हुए दूसरों को भी भव समुद्र में डुबोने वाला गुरु है वह कुगुरु है। ऐसों को गुरु

मानना भूल है जो सम्यग् ज्ञान बिना नहीं मिट सकती ॥ २ ॥ धर्म की भी भूल (धर्मतत्व) दुर्गति में पड़ते प्राणी को धारक, संपूर्ण जगत के जोवों को हितकारक, जीवदया मूल वस्तु स्वभाव का निरूपक जो होवे वह धर्म है, न कि मद्यपान, मांसभक्षण, पर स्त्री सेवन, पशु वध, (हिंसा) कन्द-मूल प्रभृति अनन्तकाय भक्षण, संसार तरू का बीजरूप शादी. (कन्यादान) यज्ञ इत्यादि अशुद्ध किया अधर्म है। इसको धर्म मानना बड़ी भूल है। यह भूल सम्यग् ज्ञान के बिना नहीं मिटती। तथा करणीय अकरणीय की भूल—जिससे अज्ञानी प्राणी आगमोक्त निर्जरा के कारण जन्म मरण मिटाने के समय को करणीय कहते हैं। और जो संसार वृद्धि का पुष्ट हेतु आश्रव है उसको अकरणीय कहते हैं। यह भूल भी सम्यग् ज्ञान के बिना नहीं मिट सकती। गुण की भूल—जो आत्मिक भाव का निवारण कारक और शेष आवरणी कर्म के निर्जरा का कारण हो वह गुण है किन्तु अज्ञानी मनुष्य कर्म का मुख्य हेतु शस्त्र चलाना वगैरह भूतादि दमन, रसग्रन्थ का पठन, विविध मन्त्रादि का चमत्कार दिखाना, विविध प्रकार का अवसरोचित संसारानुबन्धि वचन रचना करना, हाथी, घोड़ा, व्याघ्र प्रमुख का दमन करना, विविध औषध से रोगादि का दमन करना, अनेक प्रकार से राजा को प्रसन्न करना, अनेक प्रकार का स्वाङ्ग बनाना, अदृश्य पदार्थों को देखना, इत्यादि कलावालों को भी गुणी कहते हैं यह बड़ी भूल है और वह सम्यग् ज्ञान के बिना नहीं मिटती। जो अपने को कुमार्ग से छुड़ावे,

शुद्ध मार्ग दिखावे, संवर का आदर करावे, वस्तु का स्वरूप बतावे, ऐसे मुनिराज अथवा शुद्ध श्रद्धावान, साधर्मी धर्मरुची धर्मिष्ठ, धर्मोपदेशक उनको ही हितकारक कहते हैं लेकिन अज्ञानी लोग जो मिथ्यात्व आश्रव का सेवन करावें, संसार वृद्धि का कारण मिलावे, धर्म का कारण पचखान प्रभृति में अन्तराय करे, अपने स्वार्थ के लिये रोवे, हंसे, उन्हीं को हित-कारक कहते हैं यह भूल बिना सम्यग् ज्ञान के नहीं मिटती। तथा जगत में निपुण दक्ष वह है जो अनादि काल का विरोधी जन्म मरणादि को छेदन की सामग्री पाकर आश्रव का त्याग करे, यथाशक्ति विरति का आदर करे, अर्थदण्ड में न मिले, शुभा-शुभ उदय व्यापक न होवे लेकिन अज्ञ मिथ्यात्वी लोग जो बन्ध का हेतु व्यापारादि अठारह पाप सेवन करे, शत्रु का दमन करे, गृह का निर्वाह करे, अनेक आर्त रौद्र का कारण मृत उत्साह करे, किसी को झूठे फन्दे में लगावे उसको बड़ा अकलमन्द कहते हैं सो भूल बिना सम्यग् ज्ञान के मिटती नहीं। इसलिये जीव अनन्त गुणों में विशेष गुण ज्ञान आवरण के कारण का त्याग करे, निगोदादि सूक्ष्म भाव को पढ़े सुने, पूर्व का पढ़ा हुआ स्मरण करे, भक्ष्य अभक्ष्य, पेय अपेय का, जीवा जीवादि का नवतत्व का, लोकस्वरूप का, जड़चेतन का, जन्म मरण का, स्वर्ग, मृत्यु, पाताल का, इस लोक परलोक बन्ध का, निर्जरा का साध्य साधन का, शुद्धाशुद्ध करण का, षड़ द्रव्य के उत्पादक व्ययादि का, कार्य कारण का, परस्पर विलेपन चतुर्गति भ्रमण का, मुक्ति प्राप्ति का, चिदानन्द स्वरूप का, रूपी अरूपी सुख दुख का

ज्ञान, सम्यग् ज्ञान के विना नहीं होता। इससे सब से बड़ा सम्यग् ज्ञान उसके पांच भेद हैं. उन पांचों में श्रुत ज्ञान मुख्य है, क्योंकि चार ज्ञान मूक और स्वोपकारी हैं और श्रुत ज्ञान ही स्वपरोपकारी है। अतः श्री जिनभाषित द्वादशाङ्गी, स्याद्वाद शैलीमय जो आगम है उसको निरन्तर हमारी वन्दना है। आगमोक्त करणी में हमारी श्रद्धा सदा निश्चित रहे इनके सेवन से हमारा जन्म सफल हो इत्यादि प्रकार से ज्ञानपद की स्तुति करे। इस पद की भक्ति में ज्ञान की सेवा, विनय, वैयावृत्ति करें, ज्ञानी तथा पुस्तक का पूजन करे, ज्ञान का उपकरण, रूमाल, पुट्ठा प्रमुख करावे, पढने वाले की सहायता करे, अन्न, वस्त्र रहने की जगह प्रमुख देवे, आगम श्रवण करे, ज्ञान भण्डार करावे, ज्ञान की सेवा भलो भांति करे, आसातनाओं को हटावे, मिथ्या नहीं बोले, केवल-ज्ञान कल्याणक का उत्सव, समवसरणकी रचना करावे, वड़ा उत्सव करें इस प्रकार अष्टम पद के आराधन से ज्ञान वृद्धि अभिमत सिद्ध होती है।

इस पद की आराधना उज्जवल वर्ण से करें। इस पद के आराधन से जयन्त राजा तीर्थंकर हुए जिनकी कथा इस प्रकार है।

सुखेन बोध्यते ज्ञानी, नैवाज्ञानी पुमान् क्वचित्।
अप्रयत्नान्मार्गमायाति चक्षुष्मानेतरे पुनः ॥ १॥

अर्थः—ज्ञानी को सरलता से समझाया जा सकता है परन्तु अज्ञानी पुरुष को किसी भी रीति से नहीं समझाया जा सकता क्योंकि नेत्रवाले मनुष्य को बिना श्रम के ही रास्ता मिल जाता है परन्तु अन्धे को बिना श्रम के रास्ता नहीं मिलता।

पीछे वह मुनि निद्रा, विकथा, कषाय वगैरह प्रमाद का त्याग कर संयम योग में स्थिर चित हो, जिस काल में जो क्रिया करनी हो वह उसी काल में नियमित रूप से कर चारित्र का पालन करने लगा और ऐसा अभिग्रह किया कि आज से मुझे निरन्तर ज्ञानोपयोग करना। इस प्रकार अभिग्रह लेकर पांच समिति और तीन गुप्ति सहित विशुद्ध उपयोगपूर्वक अप्रमत पने से शीलव्रत रूपी बखतर पहन, मस्तक पर जिनाज्ञारूपी हस्ती और शुभ ध्यान रूपी अश्व पर चढ़, क्षमा रूपी तलवार ग्रहण कर, कर्मरूपी शत्रु के साथ युद्ध करने लगा। ऐसी लोकोत्तर सेना और आयुध सहित युद्ध करते हुए मोह राजा की प्रबल सेना दसों दिशाओं में भाग गई और जयन्त मुनिराज की विजय हुई। उस समय मुनिराज की परीक्षा करने इन्द्र महाराज दिव्याभरण से विभूषित, विविध प्रकार के हाव भाव और विलासयुक्त अनुपम सौन्दर्य शालिनी सुन्दरी का रूप धारण कर मुनि को विचलित करने आया और उन्मादपूर्ण कामोद्दीपक

वचन कहने लगा 'हे प्रभु ! मैं आपके स्वरूप से मोहित हो मेरी इच्छा पूर्ण करने आपके पास आई हूं इसलिये इस यौवन का स्वाद ले मानव जीवन सफल करो। मैं पूरी आशा से आपके पास आई हूं। आशा है आप मेरी आशा भंग न कर, संसार सुख भोग कर मुझे संतुष्ट करेंगे।' ऐसे अनेक प्रकार के अनुकूल कामोद्दीपक वचन कहे फिर भी धैर्यवान् जयंतमुनि मेरू पर्वत की तरह अचल रहे। इस तरह के उपसर्ग से भी वे श्रुत उपयोग से चलायमान नहीं हुए। तब इन्द्र ने एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप बनाया और हाथ में लकड़ी पकड़ धीरे २ मुनि के पास आ नमस्कार कर पूछा हे ऋषीवर मेरा आयुष्य अब कितना बाकी है बताओ। मुनि ने कहा हे सुरेश आपका आयु दो सागरोपम में थोड़ा सा कम है। इस प्रकार श्रुत उपयोग से उन्होंने इन्द्र को पहचान लिया। तब इन्द्र ने प्रत्यक्ष हो कहा हे मुनीश! आपको धन्य है। आप देवांगना के वचन से भी चलायमान नहीं हुए इसलिए मैं आपके चरणों को बारम्बार हर्ष पूर्वक प्रणाम करता हू। अब हे प्रभु आप कृपा कर निगोद का स्वरूप बतलाओ।

मुनि ने कहा—हे सुरेश—निगोद के असंख्यात गोले हैं। एक २ गोले में असंख्यात निगोद है, और अनन्त जीवों के समूह है। वे जीव साथ ही उत्पन्न होते हैं और साथ ही मरते हैं, साथ ही श्वासोश्वास लेते हैं और साथ ही आहार करते हैं। असंख्यात निगोद का एक गोला, एक निगोद में अनन्त जीव और उस जीव में असंख्यात आत्मप्रदेश होते है तथा

एक २ आत्मप्रदेश में अनन्त कर्मवर्गणी, एक २ वर्गणी में अनन्त परमाणु और एक २ परमाणु में अनन्त गुण पर्याय श्री जिनेश्वर ने बताये हैं। इस प्रकार निगोद का स्वरूप सुन इन्द्र प्रसन्न हो तीन प्रदक्षिणा दे नमस्कार कर मुनि के गुरू के पास गया और विनयसहित नमस्कार कर पूछा हे गुरू! जयन्त को ज्ञानोपयोग से क्या फल मिलेगा। गुरू ने कहा देवेन्द्र! यह मुनि तीर्थङ्कर पद प्राप्त करेगा। यह सुन देवेन्द्र हर्ष पूर्वक पुनः प्रणाम कर अपने स्थान पर गया। जयन्त मुनि ज्ञानोपयोग से निर्मल चारित्र का पालन कर महाशुक्र देवलोक में उत्पन्न हुए। वहां से चव कर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थङ्कर पद प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

✦✦✦

नवम् दर्शन पद आराधन विधि

"ॐ नमो दंसणस्स" इस पद की २० माला गिने ।

सम्यकत्व के ६७ भेद होने से नीचे लिखे ६७ खमासमण देना। प्रत्येक खमासमण से पूर्व यह दोहा कहना ।

दोहा

लोकालोकना भाव जे, केवली भाषित जेह ।
सत्यकरो अवधार तो, नमो नमो दर्शन तेह ॥

१ तत्वश्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
२ बहुमानादररूप सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
३ कुलिंगि संगवर्जन सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
४ मिथ्यादर्शनि संसर्ग वर्जनरूप श्री सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
५ जिनागम श्रवण परम इच्छारूप श्री सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
६ धर्मकरणे तीव्रइच्छारूपश्रीसम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
७ वैयावृत्यकरणतत्पररूपश्रीसम्यग्दर्शनगुणधराय नमः
८ श्री अरिहंत विनयकरण रूप श्री सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
९ श्रीसिद्धविनयकरणरूपश्रीसम्यग्दर्शनगुणधराय नमः
१० जिनप्रतिमाविनयकरणरूप श्रीसम्यग्दर्शनगुणधरायनम

११ श्री श्रुतज्ञान विनय करणरूप श्री सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
१२ श्री चारित्र धर्म विनयकरण रूप श्री सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
१३ श्री साधु मुनिराज विनयकरण रूप श्री सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
१४ श्री आचार्य विनयकरण रूप श्री सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
१५ श्री उपाध्याय विनय करण रूप श्री सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
१६ श्री प्रवचनरूपसंघ विनयकरण रूप श्री सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
१७ श्री सम्यग्दर्शन विनयकरण रूप सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
१८ श्री मनः शुद्धि रूप गुणधराय नमः
१९ श्री वचनशुद्धि रूप सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
२० श्री कायशुद्धिरूप श्री सम्यग्दर्शन गुणधरायः नमः
२१ शंकादूषण त्यागरूप श्री सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
२२ आकांक्षादूषण त्यागरूप श्री सम्यग्दर्शन गुणधराय न
२३ विकित्सा दूषण त्यागरूप श्री सम्यग्दर्शन गुणधर य नम
२४ मिथ्यादृष्टि प्रशंसा वर्जनरूप श्री सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः

२५ मिथ्यादृष्टिसंसर्गवर्जनरूप सम्यग्दर्शनगुणधराय नमः
२६ श्री प्रवचन प्रभावक सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
२७ श्री धर्म कथक प्रभावक सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
२८ श्री वादि प्रभावक सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
२६ श्री निमित्तक प्रभावक सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
३० श्री तपस्वी प्रभावक सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
३१ श्री विद्या प्रभावक सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
३२ श्री सिद्ध प्रभावक सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
३३ श्री कवि प्रभावक सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
३४ श्री स्थैर्यभूषणधारक सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
३५ श्री प्रभावना भूषणधारक सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
३६ श्री क्रियाकुशलभूषणधारक सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
३७ श्री अन्तरंग भूषणधारक सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
३८ श्री तीर्थसेवा भूषणधारक सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
३६ श्री शमलक्षणधारक सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
४० श्री संवेग लक्षणधारक सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
४१ श्री निर्वेद लक्षण धारक सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
४२ श्री अनुकम्पा लक्षणधारक सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
४३ श्री आस्तिक्यता लक्षणधारक सम्यग्दर्शनगुणधराय नमः
४४ अन्यदेव नमन त्याग रूप सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः

४५ अन्यदर्शनिगृहित जिनप्रतिमा नमन त्याग रूप
सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः

४६ मिथ्यादर्शनिसह संलाप त्याग रूप सम्यग्दर्शन
गुणधरायनमः

४७ मिथ्यादर्शनिसह आलाप त्याग रूप सम्यग्दर्शन
गुणधराय नमः

४८ मिथ्यादर्शनिनां आहारदान त्याग रूप सम्यग्दर्शन
गुणधराय नम

४९ मिथ्यादर्शनिनां वारंवार आहारादिदान त्यागरूप
सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः

५० रायाभियोगेणं आगारवान् सम्यग्दर्शन गुणधरायनमः
५१ बलाभियोगेणं आगारवान् सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
५२ गणाभियोगेणं आगारवान् सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
५३ देवाभियोगेणं आगारवान् सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
५४ गुरुनिग्गहेणं आगारवान् सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
५५ वित्तिकांतारेणं आगारवान् सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
५६ धर्मरूप वृक्षस्य मूलभूत सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
५७ मोक्षरूप नगरस्य द्वारभूत सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
५८ धर्मरूप वाहनस्य पीठभूत सम्यग्दर्शन गुणधरायनमः
५९ विनयादि गुणस्य आधार भूत सम्यग्दर्शन गुण-
धराय नमः

६० धर्मरूप अमृतस्य पात्रभूत सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
६१ रत्नत्रयिणां निधानभूत सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
६२ अस्ति आत्मा इति निर्णयरूप सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
६३ नित्यानित्य आत्मा इति निर्णयरूप सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
६४ जीवकर्मणः कर्त्ता इति निर्णयरूप सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
६५ जीवः कर्मणो भोक्ता इति निर्णयरूप सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
६६ अस्ति जीवस्य मोक्षः इति निर्णयरूप सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः
६७ मोक्षस्य अस्ति उपायः इति निर्णयरूप सम्यग्दर्शन गुणधराय नमः

उक्त खमासमण देकर ६७ लोगस्स का कायोत्सर्ग करे ।

स्तुति

जगत् में सब साधक जीवों को अपने साध्य के सिद्ध करने में श्री दर्शन गुण ही उपकारी है । सम्यक् दर्शन बिना कोई भी साधन सिद्धिदायक नहीं है । सार्द्ध नवपूर्व पर्यन्त श्रुतपाठी हो लेकिन दर्शन न हो तो वह अज्ञानी है और सामान्य नवकार आवश्यक मात्र श्रुतधारी को यदि दर्शन

प्राप्त हो तो वह ज्ञानी है। दर्शन के बिना साधु श्रावक की सब क्रिया द्रव्य से कही जाती है। बिना दर्शन कितना भी कष्ट तप करे किन्तु सकाम न होवे। बिना दर्शन के साधु आराधक नहीं कहा जाता। यदि अन्तर्मुहुर्त मात्र दर्शन गुण हो तो अर्द्ध पुद्गलपरावर्त के भीतर भवभ्रमण रहे किन्तु याद न हो। वह दर्शन गुण तीन प्रकार का है। मिथ्यात्व मोहिनी कर्म का उपशम करे तो उपशम की प्राप्ति होती है। जब मिथ्यात्व मोहिनी कर्म का कुछ क्षय करे, कुछ उपशम करे तो क्षयोपसमसमकित प्राप्त होता है, रत्नत्रयी के मध्य सकल धर्म का बीज मूल ज्ञान, चारित्र, ऊपर दल, थल, फूल, प्रमुख है। मोक्षार्थी जीवों को दर्शन समान कोई लाभ नहीं है। जगत् में संसारी जीवों को सब सुलभ है लेकिन अकाल में खीर खांड का भोजन, समुद्र में डूबते को नाव की प्राप्ति जैसे दुर्लभ है वैसे ही समकित की प्राप्ति दुर्लभ है, अतुल भाग्य के उदय से समकित का लाभ होता है। दर्शन के समान कोई रत्न नहीं है तथा दर्शन के समान कोई बान्धव हितकारक नहीं है। दर्शन के समान दूसरा धर्म साधन में तत्व नहीं है। तीर्थङ्कर प्रमुख अनेक ऋद्धि पाने का हेतु एक दर्शन ही है। इस हेतु से देवऋद्धि, नरेन्द्रऋद्धि, धन धान्य कोष-कोष्ठागार विविध काम भोग विलास प्रमुख पौद्गलिक सुख की चाहना मैं नहीं करू किन्तु एक श्री जिनाज्ञा प्रमाण बोध बीज प्राप्ति जन्म जन्मांतर में सुलभ होवे यही हमारी प्रार्थना है। प्रति क्षण दर्शन गुणधारी को और दर्शन गुण को

हमारी वन्दना हो, हमारा दर्शनाराधन सफल हो इत्यादि प्रकार से स्तवना करे और पारणा के दिन अथवा उसी दिन बड़ी पूजा करे करावे, संघ भक्ति, स्वामी वात्सल्य करे, दर्शनाधारी साधर्मी का स्वागत करे, शासनोन्नति, रथयात्रा, पंच कल्याणक महोत्सव, अष्ट विधान, प्रासादपर ध्वजारोहण, अमारीपटह घोषण, अन्न, वस्त्र, दान, आजोविका सहाय, इत्यादि विधि करे तथा निरतिचार सम्यक्त्वका पालन करे और अदर्शन का संसर्ग परित्याग करे, सर्व जीवों से मैत्री रखे, कषाय मिटावे, सब सुख दुःख को औदयिक भावकर्मोदय माने, गुणघाती कषाय सर्वथा न रखे। अनुक्षण दर्शनशुद्धि विचारे, धर्माचार्य की विविध भक्ती करे, सब में से गुण ग्रहण करे, दोष को चित्त से निकाले, अपनी अनादी काल को भूल मिटी नहीं ऐसा अपने में दोष विचारे, जिनोक्त सूक्ष्मभाव सच्चा है ऐसी श्रद्धा करे, रुचिवाले जीवों को दर्शन प्राप्ती करावें, पढ़नेवालों को पढ़ने में स्थिर करावे इत्यादि प्रकार से नवमें पद का आराधन करे।

इस पद की आराधना उज्ज्वल वर्ण से करे। इस पद का आराधना से हारेविक्रम राजा जिन हुए जिनकी कथा इस प्रकार है।

नवमें दर्शन पद आराधन पर हरिविक्रम राजा की कथा

भरत क्षेत्र में हस्तिनापुर नगर था। वहां जिनाज्ञा का पालन करने वाला व न्यायी हरिषेण राजा राज्य करता था। उसके शीलवान व स्वरूपवान रानी थी। उसके हरिविक्रम नाम का गुणवान पुत्र था। यौवनावस्था में पहुंचने पर राजा ने उसका छत्तीस राजकन्याओं के साथ विवाह कर दिया। वह उनके साथ सुख भोगता हुआ दिन व्यतीत करने लगा।

दुर्भाग्यवश पूर्व पापोदय से कुमार के शरीर में एक ही साथ आठ प्रकार का कोढ़ उत्पन्न हो गया। उसकी तीव्र वेदना से कुमार व्याकुल होने लगा। उसकी बत्तीसों स्त्रियां उसको देख अत्यन्त दुःख से रोने लगी। अनेक चतुर वैद्यों की औषधि देने पर भी कुमार का रोग जरा भी शांत नहीं हुआ। उस नगर में धनंजय यक्ष की काफी प्रसिद्धि थी इसलिए उसने मन में कहा कि हे दीनवत्सल धनंजय देव! आपकी जगत् में बड़ी महिमा है, इसलिए मेरा निवेदन है कि यदि मेरा रोग दूर हो जायगा तो मैं तुम्हारी यात्रा करके पीछे गृह में अन्न डालूंगा और आपकी भली प्रकार पूजा तथा उत्सव कर आपके भोग लगाऊंगा। इस तरह व्याधि से पीड़ित राजकुमार ने पुण्य पाप का विचार किये बिना मिथ्यात्व को ग्रहण किया।

उसी समय नगर के उद्यान में परम उपकारी केवल ज्ञान रूपी सूर्य से जगत् को प्रकाश करनेवाले केवली मुनि पधारे। देवकृत सुवर्ण कमल पर आरूढ हो केवली भगवान समस्त जीवों को देशना देने लगे। हरिषेण राजा को खबर होते ही वह भी बड़े उत्साह से अपने पुत्र को लेकर वहां आया। केवली गुरू के दर्शन करते ही कुमार की सर्व व्याधि इस तरह दूर हो गई जिस तरह सिंह को देखकर हिरण भाग जाता है। कुमार ने हर्ष पूर्वक गुरू को प्रणाम किया और अपने उचित स्थान पर बैठ गया। पीछे गुरू महाराज ने देशना आरम्भ की—

'हे भव्यजनो! दुःख से भरपूर इस संसार समुद्र में घुमाने वाले पाप कर्मों से दूर रहो क्योंकि जैसे कर्म इस भव में करते हैं वैसे ही पर भव में उदय आते हैं। जिस समय जैसे परिणाम से कर्म किया हो वैसा फल वह देता है। पाप कर्म से अनेक प्रकार की तीव्र व्याधि और दुःख सहने पड़ते हैं। ऐसा समझकर पापकर्म से विरक्त हो दान, दया, संयम और जिन सेवा रूपी सत्कर्म करना चाहिये।'

उस समय राजकुमार हरिषेण हाथ जोड़ विनय सहित बोला हे प्रभु! मैंने पूर्व जन्म में ऐसा कौनसा महापाप किया था जिससे इस युवावस्था में असह्य वेदना मुझे उठानी पड़ी।

गुरू ने कहा हे कुमार! तेरा पूर्व भव सुन! पूर्व महाविदेह में श्रीपुर नगर में समस्त अधर्मों का अधिपति पद्म राजा था। वह निरन्तर शिकार करने जाता और

कुमार ! अपनी की हुई मान्यता के अनुसार मुझे पाड़े का भोग लगा नहीं तो मैं तुझे मार डालूंगा।

कुमार ने बड़े धैर्य से कहा हे यक्ष ! सब जीवों को अपना जीव प्यारा है। कोई भी मरना नहीं चाहता। जैसे अपने को जीने की इच्छा होती है वैसे दूसरे जीवों को भी होती है। इसलिये मैं तो कभी भी जीव हिंसा करके तुझे तृप्त करने को तैयार नहीं। तेरे देवत्व और ऐश्वर्य को भी धिक्कार है कि तू दुर्गति को देनेवाली महादुःख के हेतु रूप हिंसा करने व करवाने में स्नेह करता है। उसी को धन्य है और वही गुणगान के योग्य है जिनका हृदय करुणा पूर्ण है। तू मेरे से भोग मांगता है यह भी मिथ्या है क्योंकि मेरी व्याधि तो गुरु के दिव्य दर्शन से नष्ट हुई है न कि तेरे से।

कुमार के ऐसे वचन सुन यक्ष ने अतिशय क्रोधित हो कुमार पर जोर से मुगदर का प्रहार किया जिससे कुमार मूर्छित हो जमीन पर गिर पड़ा। थोड़ी देर में शीतल पवन से चैतन्य हो होश में आया। फिर यक्ष दयापूर्ण हृदय से, विस्मित हो बोला हे कुमार ! मैं तेरे धैर्य से खुश हुआ हूं। अब मुझे पाड़े के मास की इच्छा नहीं है परन्तु सिर्फ मुझे नमस्कार कर अपने घर जा नही तो तेरा नाश कर दूंगा।

कुमार ने कहा हे यक्ष ! जो देव हिंसा करने व कराने में योग देता है ऐसे मिथ्यादृष्टि देव को कभी नमस्कार नही करूंगा। यह मस्तक तो सब दोषों से रहित वीतराग

परमात्मा के सिवाय किसी के सामने नहीं झुकेगा। जिसने अमृत का स्वाद लिया है उसकी खारे नमक पर कैसे रुचि हो सकती है? परन्तु जो तू दया धर्म को ग्रहण कर वीतराग की आज्ञा का पालन करे तो तुझे स्वधर्मी समझ तेरी बड़े आदर से सेवा कर सकता हूं।

हरिविक्रम कुमार के ऐसे वचन सुन यक्ष को परम शांति मिली और जीव हिंसा का त्याग कर मिथ्यात्वरहित हो सम्यगदृष्टि बना। इस तरह सम्यगदर्शन के प्रभाव से शत्रु भी मित्र बन अनुचर की तरह उसकी सहायता करने लगा। पीछे कुमार राजा हुआ और अपने पराक्रम से अनेक राज्यों को जीत अपने आधीन किये और न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करने लगा। उस समय कलिङ्ग देश का यमराज समान क्रूर और महापराक्रमी यमराज राजा ने अपने भुजबल के अभिमान से हरिविक्रम राजा की आज्ञा की अवहेलना की। जिससे हरिविक्रम ने बड़ी सेना लेकर कलिङ्ग देश पर आक्रमण किया और कहलाया कि आज से मेरी आज्ञा का पालन कर नहीं तो युद्ध करने को तैयार हो जा। यह संदेशा सुन यमराज क्रोधित हो अपनी सैना ले उसके सामने आया। दोनों ओर के सैनिक वीरता से लड़ने लगे। देखते २ दोनों सैनायें एकमेक हो गई और भयङ्कर मारकाट होने लगी, रुधिर की नदी बहने लगी। अनेक सैनिकों के धड़ और मस्तक गिरने लगे। उस समय धनंजय यक्ष हरिविक्रम की मदद करने को आ पहुँचा। देव के प्रभाव से हरिविक्रम के

ने हाथ जोड़कर पूछा—हे प्रभु ! मैं इस संसार से भयभीत हो आपकी शरण ले व्रत ग्रहण करना चाहता हूं । गुरु ने कहा जैसी तुम्हारी इच्छा । गुरु को वंदन कर राजमहल में जा अपने पुत्र विक्रमसेन को राजसिंहासन दे सब की आज्ञा लेकर महोत्सवपूर्वक संसाररूपी समुद्र को पार करनेवाली दीक्षा ग्रहण की । पीछे निरतिचार से दूषण रहित चारित्र का पालन करते हुए बारह अङ्ग का अध्ययन किया ।

एक दिन गुरु से बीसस्थानक तप की महिमा सुनी । उसमें नवमें दर्शन पद की महिमा सुन उस पद की आराधना का नियम लिया और निरन्तर शंका रहित अष्टाचार युक्त दृढ़ चित्त से शुद्ध सम्यक्त्व का पालन करने लगा ।

एक बार गुरु के साथ हरिविक्रम मुनि श्रीपुर नगर में पधारे । उस समय भरतक्षेत्राधिपति देवसभा में राजर्षि हरिविक्रम मुनि के गुणों की प्रशंसा करने लगे । उस समय एक देव शंकित हो उनकी परीक्षा लेने श्रीपुर नगर में समृद्धिशाली सार्थवाह बन देवमाया से सुन्दर महल बनाकर रहने लगा ।

एक बार हरिविक्रम मुनि इर्यापथिकी ढूंढते गोचरी के लिये उस सार्थवाह के यहां आकर धर्मलाभ दे खडे रहे। मुनि को देख सार्थवाह आदरपूर्व [illegible] र मधुर वचन से बोला हे मुनिपति ! व्यर्थ [illegible] दीक्षा का त्याग कर इस [illegible] करो । [illegible] भोग

कर मनुष्य जन्म सफल करो। इसके सिवा कष्ट ज्यादा और फल कम देनेवाले आर्हत् धर्म का त्याग कर थोड़ा कष्ट और विशेष फल देनेवाले बौद्ध धर्म को ग्रहण करो। इस प्रकार बहुत लालच देने पर भी मुनि जरा भी विचलित नहीं हुए। तब देव ने अपनी माया को समेट प्रगट हो मुनि को प्रणाम कर कहने लगा। हे महाभाग! आपको धन्य है। क्योंकि मैंने अनेक प्रकार से आपको विचलित करने का प्रयत्न किया परन्तु आपकी आर्हत धर्म पर ऐसी दृढ़ श्रद्धा देख मैं अत्यन्त हर्षित हुआ हूं। इस प्रकार मुनि की स्तवना कर देव अपने स्थान पर गया।

हरिविक्रम मुनि ने निश्चल समकित पालन कर जिन नाम कर्म का बन्ध किया। यहां से काल धर्म पा विजय विमान में बत्तीस सागरोपम आयुष्यवाले देव हुए। वहां से च्यव पूर्व विदेह में तीर्थंकर पदवी प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

२१ शुद्धागमोक्त क्रियाकारकस्य अनाशातना रूप
विनय गुण प्राप्तेभ्यो नमः

२२ शुद्धागमोक्त क्रियाकारकस्य भक्ति करण रूप
विनय गुण प्राप्तेभ्यो नमः

२३ शुद्धागमोक्त क्रियाकारकस्य बहुमान करण रूप
विनयगुण प्राप्तेभ्यो नमः

२४ शुद्धागमोक्त क्रियाकारकस्य स्तुतिकरण रूप
विनयगुण प्राप्तेभ्यो नमः

२५ श्रीजिनोक्त धर्मस्य अनाशातना रूप विनयगुण
प्राप्तेभ्यो नमः

२६ श्री जिनोक्त धर्मस्य भक्तिकरण निपुण रूप
विनय गुण प्राप्तेभ्यो नमः

२७ श्री जिनोक्त धर्मस्य बहुमान करण रूप
विनय गुण प्राप्तेभ्यो नमः

२८ श्री जिनोक्त धर्मस्य स्तुति करण रूप
विनय गुण प्राप्तेभ्यो नमः

२९ ज्ञानगुण-प्राप्तस्य अनाशातना रूप विनयगुण
प्राप्तेभ्यो नमः

३० ज्ञानगुण-प्राप्तस्य भक्तिकरणरूप विनयगुण
प्राप्तेभ्यो नमः

३१ ज्ञानगुण-प्राप्तस्य बहुमान करणरूप विनयगुण
प्राप्तेभ्यो नमः

३२ ज्ञानगुण-प्राप्तस्य स्तुति करण रूप विनयगुण प्राप्तेभ्यो नमः
३३ ज्ञानस्य अनाशातना रूप विनयगुण प्राप्तेभ्यो नमः
३४ ज्ञानस्य भक्तिकरण रूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो नमः
३५ ज्ञानस्य बहुमान करणरूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो नमः
३६ ज्ञानस्य स्तुति करण रूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो नमः
३७ श्री मदाचार्यस्य अनाशातना रूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो नमः
३८ श्री मदाचार्यस्य भक्ति करण रूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो नमः
३९ श्रीमदाचार्यस्य बहुमान करण रूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो नमः
४० श्री मदाचार्यस्य स्तुति करण रूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो नमः
४१ स्थविर मुनिनां अनाशातना रूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो नमः
४२ स्थविर मुनिनां भक्तिकरण रूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो नमः
४३ स्थविर मुनिनां बहुमान करण रूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो नमः
४४ स्थविर मुनिनां स्तुति करण रूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो नमः

४५ श्री मदुपाध्यायस्य अनाशातना रूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो
४६ श्री मदुपाध्यायस्य भक्ति करणरूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो
४७ श्री मदुपाध्यायस्य बहुमान करण विनयकरण प्रा
४८ श्री मदुपाध्यायस्य स्तुति करण रूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो न
४९ श्री गणावच्छेदकस्य अनाशातना रूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो न
५० श्रीगणावच्छेदकस्य भक्ति करण रूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो नम
५१ श्रीगणावच्छेदकस्य बहुमान करण रूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो नमः
५२ श्रीगणावच्छेदकस्य स्तुति करण रूप विनयकरण प्राप्तेभ्यो नमः

उक्त खमासमण देकर ५२ लोगस्स का कायोत्सर्ग करे।

स्तुति

विनय से अष्टविधकर्म का नाश होता है क्योंकि जिनागम में कहा है कि सर्व धर्म का मूल विनय है, और विनय का फल सुश्रुषा, सुश्रुषा का फल श्रमण और श्रमण का

फल ज्ञान, ज्ञान का फल विरति, विरति का फल आश्रव, आश्रव का फल संवर, संवर का फल तप है, तप का फल निर्जरा, उसका फल क्रिया निवृत्ति, उसका फल अयोगित्व, अयोगीपने का फल भवसंततिक्षय, भवसंततिक्षय का फल मुक्ति है। इसलिये सर्व कल्याण का भाजन विनय है। जैसे वृक्ष का मूल दृढ़ सरस होने से स्कन्ध, शाखा, प्रशाखा, दल, पुष्प, फल प्रमुख सब सुलभ होता है वैसे ही विनय गुणवाला पृच्छक प्राणी श्रुत शील के तत्व को प्राप्त होता है, पाप का नाश करता है और सिद्ध को प्राप्त होता है। जैसे सुवर्ण में नरमी बहुत है, नमाने से नम जाता है, कालिमा नहीं है, अग्नि में तपाने से अधिक उज्वल होता है, इसीसे सातों धातु में सुवर्ण अधिक श्रेष्ठ कहा जाता है और पवित्र माना जाता है वैसे ही विनय सब गुणों में श्रेष्ठ है। विनय-गुणसंपन्न प्राणी मान, जय, मृदुता को प्राप्त करता है। मिथ्यात्व के कठिन हट का परित्याग करता है, कृष्णलेश्या-रूप कालिमा नहीं रहती और, सबसे अधिक माननीय होता है। इससे मोक्षार्थी प्राणी को विनय बिना किसी गुण की प्राप्ति नहीं होती। विनय गुण लौकिक लोकोत्तर भेद से दो प्रकार का है। लौकिक विनय से इहलोक में सब सानुकूल रहता है और यश कीर्ति होती है, सज्जन कहलाता है। लोकोत्तर विनय से प्राणी इहलोक परलोक में परम सुख को प्राप्त करता है, और इहलोक में विराधक भाव में साधकता को प्राप्त होता है, श्री संघ में प्रसंशनीय

आचार्य उपाध्यायादि पदवी को पाता है, श्रीसंघ में मुख्य होता है, चतुर्विध संघ का मान्य पूज्य होता है, परभव में सकल कर्म का नाश करता है, आदि सब तरह कल्याण का अनुभव करता है। इसलिए अरिहन्तादि १३ पद का विनय करना हमारा परम साधन है, हमारा मनोरथ वृक्ष का अवन्ध्यबीज है। मेरे को जन्म जन्म में अरिहन्तपद का विनय प्राप्त हो यही हमारी आन्तरिक प्रार्थना है। इस प्रकार से स्तुति करके विनयपद के उद्यापन में २३ पद की अनाशातना सम्यक्त्व है अतः यथाशक्ति अरिहन्त की पूजा करे, मन्दिर बनवावे, मन्दिर का जीर्णोद्धार करावे, शासन माँगे, विनय पूर्वक उत्तम द्रव्य से प्रतिमाजी को साफ करे, पुस्तक लिखावे, पहले की लिखी पुस्तकों का संरक्षण करे-करावे, पढ़े-पढ़ावे, आवश्यकादि क्रिया विधि बहुमान से करे, क्रिया का फल औरों से कहे, दूसरों को क्रिया सिखलावे, स्थविर साधु को विनय से, औषध प्रमुख का निमन्त्रण करे, प्रशंसा करे, बहुमान विनय से सधर्मक्ति, स्वामिवात्सल्य करे। इस प्रकार दशम पद का आराधन करे ॥

इस पद का ध्यान उज्ज्वल वर्ण से करे। इस पद की आराधना से धन सेठ तीर्थङ्कर हुए जिनकी कथा इस प्रकार है।

+++

दसवें विनय पद पर धन सेठ की कथा

भरतक्षेत्र में मृतिकावती नगरी थी। वहां महान् प्रतापी यशस्वी जितारी राजा राज्य करता था। वह अपनी प्रजा का पालन पुत्रवत् करता था। उसी नगर में श्राद्धगुणों से विभूषित निर्मल समकितधारी सुदत्त सेठ रहता था। उसके धन और धरण दो पुत्र थे। इन दोनों में धन ने अपने उत्तम गुणों के कारण यश प्राप्त किया और धरण निर्दयी, क्रूर और इर्षालु होने से सब जगह उसकी अपकीर्ति हुई।

जब धन का यश अधिक फैलने लगा तो इर्षालु धरण अपने ज्येष्ठ बन्धु धन को मार डालने का उपाय सोचने लगा। परन्तु किसी तरह उसे अवसर नहीं मिला। तब एक दिन धन के पास जाकर कहने लगा कि हे भाई अब हम बड़े हो गये हैं इसलिए कोई उद्यम कर द्रव्य प्राप्त करना चाहिये। अभी तक पिता के द्रव्य से ही सुख भोग रहे हैं परन्तु स्वपरिश्रम से पैदा किए धन से सुख भोगना ही उत्तम होता है। इसलिए परदेश जाकर कर भाग्य की परीक्षा करना चाहिये।

इस प्रकार धरण के कहने और उसकी कुटिलता को नहीं समझने से धनदेव माता-पिता की आज्ञा ले भाई के साथ परदेश रवाना हुआ। मार्ग में चलते २ धरण ने धनदेव से कहा कि हे भाई! संसार में सुख धर्म से होता है या पाप से।

धनदेव ने कहा भाई सुख धर्म से ही होता है और सुख का कारण रूप धर्म का महत्व बताने में कौन समर्थ है। धर्म इच्छित अर्थ और भोग देनेवाला है तथा अन्त में स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति भी धर्म से ही होती है।

धरण ने कहा—भाई! तेरा कहना झूठा है क्योंकि लोग अधर्म से सुखी होते हैं यह बात प्रत्यक्ष है। इस प्रकार विवाद करते हुए दोनों भाइयों ने यह शर्त की कि हम दोनों की बात किसी से पूछने पर जिसकी बात सच बतावे वह दूसरे की आंख निकाल ले। यह शर्त कर एक गांव में जाकर किसी अज्ञानी आदमी से पूछा कि प्राणियों को जो सुख होता है वह धर्म से होता है या अधर्म से। अज्ञानी ने उत्तर दिया कि अधर्म से सुख होता है। धर्म तो केवल भोले लोगों को ठगने के लिए प्रपंच मात्र है। इस प्रकार धनदेव शर्त हार गया। इसलिए पापात्मा धरण ने निर्दयता से उसकी दोनों आंखें निकाल ली। पीछे दोनों वहां से चले। रास्ते में एक भयंकर जंगल आया वहां धनदेव को छोड़ धरण चुपचाप घर आया और माता-पिता को रुदन करते हुए कहने लगा कि हम दोनों भाई रास्ते में जङ्गल आने से वहां विश्राम करने को ठहरे वहां एक विकराल बाघ ने आकर धन का भक्षण कर लिया और मैं भय से वापिस यहां चला आया।

इस तरह धरण के मुंह से धनदेव की मृत्यु की बात सुन माता-पिता और धनदेव की स्त्री हृदय विदारक विलाप करने लगे। पुत्र मोह से माता मूर्छित हो गई। धनदेव की

स्त्री भी इस प्रकार विलाप करने लगी कि वज्र समान हृदय वाले मनुष्य का दिल भी पिघल जावे। इस तरह सब स्वजन धनदेव के वियोग से दुःखी हुए। परन्तु दुष्ट धरण को तो प्रसन्नता ही हुई।

पुण्यात्मा धनदेव को जंगल के वनदेवता ने पुण्यात्मा समझ उस पर प्रसन्न हो दिव्य अंजन से उसके नेत्र निर्मल किए जिससे हर्षित हो धनदेव वनदेवता की स्तुति करने लगा। वनदेवता ने वह दिव्यांजन उसको देकर कहा कि यह अंजन किसी भी अन्धे की आंख में लगानें से उसके नैत्र निर्मल हो जायेंगे। ऐसा कह वह देव अदृश्य हो गया। पीछे वहां से धनदेव सुभद्रपुर नगर में आया। वहां अरविन्द राजा की देवाङ्गना समान प्रभावती नाम की पुत्री पूर्व पाप कर्म के संयोग से मस्तक में व्याधि होने से दोनों नैत्रों से अन्धी हो गई थी। अनेक प्रकार की औषधियां करने पर भी उसके नेत्र ठीक नहीं हुए। तब राजा ने नगर में घोषणा की कि जो कोई पुरुष राजकुमारी की आंखें ठीक करेगा उसे राजकुमारी सहित आधा राज्य दिया जावेगा। यह घोषणा सुन धनदेव राजा के पास आकर बोला कि मै राजकुमारी के नैत्र ठीक कर दूंगा। राजा नें कहा तो मै घोषणा के अनुसार अपने वचन का पालन करूंगा। पीछे धनदेव ने दिव्य अंजन से राजकुमारी के नेत्र ठीक कर दिये। राजा ने हर्षित हो राजकुमारी के साथ उसका विवाह कर आधा राज्य कन्यादान में दिया। इस प्रकार धनदेव नें पुण्य व सत्य से राज्य प्राप्त

षड्भिर्मासैस्त्रयापक्षैः षड्भिरेव दिने किलः ।
अत्युग्रपुन्यपापांना-मिहैव जायते फलं ॥ १ ॥

अर्थ—इस जगत में अति उग्र पुण्य पाप का फल छः माह तथा छः पक्ष या छः दिन में ही मिल जाता है।

बाद में धनदेव को सारी हकीकत मालूम हुई इसलिए उसे संसार से वैराग्य हुआ और चारित्र लेने को तैयार हुआ। पीछे माता-पिता को बुला सबसे हर्ष पूर्वक मिल मलयके पुत्र को पिता के सुपुर्द कर भुवनप्रभ मुनि के पास चारित्र लिया। धीरे २ सब अङ्ग उपाङ्ग पढ़ क्षाम्यादि गुणों से विभूषित हो गुरू के पास विनयपूर्वक रह ग्राम नगरादि में विचरने लगा।

एक दिन धनदेव मुनि ने गुरू से देशना सुनी कि जो कोई सर्व गुणों में प्रधान विनय गुण से गुरुजनों को संतुष्ट करता है उसे शाश्वत सुख प्राप्त होता है, क्योंकि विनय से ज्ञान और ज्ञान से शुद्ध समकित की प्राप्ति होती है, उससे सम्यक् चारित्र, चारित्र से संवर, संवर से तपस्या, तपस्या से निर्जरा, निर्जरा से अष्ट कर्म का नाश, कर्मनाश से केवलज्ञान और उससे अनन्त अव्याबाध मोक्ष प्राप्त होता है।

धनमुनि ने इस प्रकार गुरू से विनय की महिमा सुन 'गुरू आदि पंच परमेष्ठी का त्रिकरण शुद्धि से विनय करने का नियम लिया।

एक बार गुरू महाराज के साथ विहार करते २ साकेतपुर

नगर के उद्यान में आये। वहां आदित्य चैत्य में त्रैलोक्य बन्धु श्री जिनेश्वर की प्रतिमा को वन्दन करने धनदेव गये। वहां विनयपूर्वक शुद्ध भाव से स्थिर हो भगवान् की स्तुति करने लगे। उस समय धरणेन्द्र वहां भगवान् के दर्शन करने आया। उसने मुनि को निश्चल ध्यान से भगवान् की स्तुति करते देख परीक्षा करने के लिये अनेक सर्प पैदा कर मुनि के शरीर पर लिपटा और कटवा कर कई उपसर्ग करने लगा। फिर भी मुनि अपने ध्यान से चलायमान नहीं हुए। तब धरणेन्द्र प्रगट हो मुनि की स्तुति करने लगा। पीछे अपने किए उपसर्ग की क्षमा मांग, धरणेन्द्र आचार्य महाराज के पास जा वन्दन कर पूछने लगा कि हे महाराज! धन मुनि ने जिन और जिन चैत्य की उत्तम विनय से क्या पुण्य उपार्जन किया? गुरू ने कहा हे धरणेंद्र इस विनय से मुनि ने जिन नाम कर्म का बन्ध किया है। इस प्रकार विनय का अत्युत्तम फल सुन धरणेन्द्र अपने स्थान को लौट गया।

इसके बाद धनमुनि काल धर्म पा सहस्त्रार देवलोक में उत्पन्न हुए। वहां से चव महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पद प्राप्त कर मोक्ष जायेंगे।

एकादश चारित्र पद आराधन विधि

"ॐ नमो चारित्तस्सः" इस पद की २० माला गिनें।

चारित्र के ७० भेद होने से ७० खमासमण देना। प्रत्येक खमासमण से पूर्व यह दोहा बोलना।

दोहा

रत्नत्रयी विनु साधना, निष्फल कही सदिव।
तव रमण नुं निधान छे, जय जय संयम जीव॥

१ सर्वतः प्राणातिपात विरमणव्रत धराय श्री चारित्राय नमः
२ सर्वतः मृषावाद विरमणव्रत धराय श्री चारित्राय नमः
३ सर्वतः अदत्तादान विरमणव्रत धराय श्री चारित्राय नमः
४ सर्वतः मैथुन विरमणव्रत धराय श्री चारित्राय नमः
५ सर्वतः परिग्रह विरमणव्रत धराय श्री चारित्राय नमः
६ सम्यक् क्षमा गुणधराय श्री चारित्राय नमः
७ सम्यग् मार्दव गुणधराय श्री चारित्राय नमः
८ सम्यगार्जव गुणधराय श्री चारित्राय नमः
९ सम्यग् मुक्ति गुणधराय श्री चारित्राय नमः
१० सम्यग् तप गुणधराय श्री चारित्राय नमः
११ सम्यग् संयम गुणधराय श्री चारित्राय नमः

१२ सम्यग् सत्य गुणधराय श्री चारित्राय नमः
१३ सम्यग् शौच गुणधराय श्री चारित्राय नमः
१४ सम्यग् श्रकिंचन गुणधराय श्री चारित्राय नमः
१५ सम्यग् ब्रह्मचर्य गुणधराय श्री चारित्राय नमः
१६ विगत प्राणातिपाताश्रवाय श्री चारित्राय नमः
१७ विगत मृषावादश्रवाय चारित्राय नमः
१८ विगत श्रदत्तादानाश्रवाय चारित्राय नमः
१६ विगत मैथुनाश्रवाय चारित्राय नमः
२० विगत परिग्रहाश्रवाय चारित्राय नमः
२१ श्रोतेन्द्रिय विषय विरक्ताय चारित्राय नमः
२२ घ्राणेन्द्रिय विषय विरक्ताय चारित्राय नमः
२३ चक्षुरिन्द्रिय विषय विरक्ताय चारित्राय नमः
२४ रसनेन्द्रिय विषय विरक्ताय चारित्राय नमः
२५ त्वगिन्द्रिय विषय विरक्ताय चारित्राय नमः
२६ विजित क्रोधाय चारित्राय नमः
२७ विजित मान दोषाय चारित्राय नमः
२८ विजित माया दोषाय चारित्राय नमः
२६ विजित लोभ दोषाय चारित्राय नमः
३० मनोदण्ड रहिताय चारित्राय नमः
३१ वचनदण्ड रहिताय चारित्राय नमः
३२ कायादण्ड रहिताय चारित्राय नमः

३३ वसति शुद्धब्रह्मव्रतयुक्ताय चारित्राय नमः
३४ स्त्रीभिः सह रत वर्जन ब्रह्मव्रत युक्ताय चारित्राय न
३५ स्त्री सेवितासन वर्जन ब्रह्मव्रत युक्ताय चारित्राय न
३६ स्त्री रूपानवलोकन ब्रह्मव्रत युक्ताय चारित्राय नम
३७ कुड्यन्तरित स्त्रीपुरुष संयुक्त वसतिशयन वर्जनकाय
ब्रह्मव्रत युक्ताय चारित्राय नमः
३८ पूर्वक्रीडित क्रीडास्मरण वर्जनकाय ब्रह्मव्रत

३९ अतिमात्राहार वर्जनकाय ब्रह्मव्रत
चारित्राय नमः
४० सरसाहार वर्जनकाय ब्रह्मव्रत चारित्राय नमः
४१ विभूषणादिना शरीरशोभा वर्जनकाय ब्रह्मव्रत

४२ आचार्य वैयावृत्तिकरण रूप चारित्राय नमः
चारित्राय नम
४३ उपाध्याय वैयावृत्तिकरण रूप चारित्राय नमः
४४ तपस्वी वैयावृत्तिकरण रूप चारित्राय नमः
४५ शिष्य वैयावृत्तिकरण रूप चारित्राय नमः
४६ ग्लान वैयावृत्तिकरण रूप चारित्राय नमः
४७ साधु वैयावृत्तिकरण रूप चारित्राय नमः
४८ साध्वी वैयावृत्तिकरण रूप चारित्राय नमः
४९ संघ वैयावृत्तिकरण रूप चारित्राय नमः
५० चंद्रादि कुलस्य वैयावृत्तिकरण रूप चारित्राय नमः

५१ गण वैयावृत्तिकरण रुप चारित्राय नमः
५२ सम्यक् ज्ञानगुणयुक्ताय चारित्राय नमः
५३ सम्यक् दर्शन सहिताय चारित्राय नमः
५४ सम्यक् चारित्र गुणयुक्ताय चारित्राय नमः
५५ अनसन तपयुक्ताय चारित्राय नमः
५६ सम्यग्नोदर तपयुक्ताय चारित्राय नमः
५७ सम्यग्वृत्ति संक्षेप तपयुक्ताय चारित्राय नमः
५८ सम्यग् रसत्याग तपयुक्ताय चारित्राय नमः
५९ सम्यक् कायक्लेश तपयुक्ताय चारित्राय नमः
६० सम्यक् संलीनता तपयुक्ताय चारित्राय नमः
६१ प्रायश्चिताभ्यन्तर तपयुक्ताय चारित्राय नमः
६२ विनयाभ्यन्तर तपयुक्ताय चारित्राय नमः
६३ वयावृत्ति तपयुक्ताय चारित्राय नमः
६४ स्वाध्याय अभ्यन्तर तपयुक्ताय चारित्राय नमः
६५ शुभध्यान तपयुक्ताय चारित्राय नमः
६६ कायोत्सर्ग तपयुक्ताय चारित्राय नमः
६७ क्रोधजय कराय चारित्राय नमः
६८ मानजय कराय चारित्राय नमः
६९ मायाजय कराय चारित्राय नमः
७० लोभ जय कराय चारित्राय नमः

उक्त खमासमण देकर ७० लोगस्स का कायोत्सर्ग करे।

साथ कुमार ने युद्ध किया। इस युद्ध में कुमार ने तलवार के प्रहार से विद्याधर को निर्बल कर पृथ्वी पर पटका। वह तीव्र प्रहार से रुदन करने लगा। उसके रुदन को सुन उसका भाई अश्वनीवेग खेचर अचानक आकाश मार्ग से उतर आया। उसने अपने भाई की दुर्दशा देख अत्यंत क्रोधित हो कुमार और उसके मित्र को उठाकर आकाश में उछाला। वहां से वे किसी अल्प जलवाले अन्धे कुए में गिर पड़े। बहुत कठिनाई से उस कुए से निकल कर देशान्तर देखने की इच्छा से दोनों मित्र आगे चले।

चलते २ वे किसी अरण्य में पहुंचे। वहां लक्ष्मीदेवी के मन्दिर के पास किसी पुरुष को वृक्ष की डाल पर बंधा हुआ देखा और पास ही मनोहर आभूषणों से विभूषित सुन्दर स्त्री को विलाप करते देखा। उसके पास जाकर कुमार ने पूछा हे बहिन! यह पुरुष कौन है? और इसकी ऐसी हालत कैसे हुई? इसके पास बैठकर तू क्यों रो रही है?

कुमार के वचन सुन वह सुन्दरी बोली हे परोपकारी पुरुष! यह विद्याधरों का स्वामि मेरा पति है। हम क्रीड़ा करने के लिए इस लक्ष्मीदेवी के वन में आकर पुष्प एकत्र करते थे, इतने में लक्ष्मीदेवी ने कुपित हो मेरे स्वामि की यह दुर्दशा की है। यदि आप कृपा कर मेरे पति को बंधन से छुड़ा दें तो बड़ा उपकार मानूंगी।

विद्याधरी के करुणार्द्र वचन सुन कुमार विद्याधर को छुड़ाने के लिए लक्ष्मीदेवी की स्तुति करने लगा।

हे भक्तवत्सल जगदेश्वरी, कमलादेवी ! तेरी जय हो । सुगुणभण्डार, जगदाधार, पद्मादेवी ! तेरी जय हो । हे ननी ! तेरी कृपा से मूर्ख पंडित हो जाते हैं और अवगुणी णवान हो जाते हैं ! हे सुरासुर सेवित परमेश्वरी ! मुझ रीब को स्तुति सुन प्रसन्न हो मुझे दर्शन दे ।

कुमार की स्तुति सुन लक्ष्मीदेवी प्रत्यक्ष हो प्रसन्न मुख कहने लगी—हे वत्स ! मै तेरे पर प्रसन्न हुई हूं, तू इच्छित र मांग, मै खुशी से दूंगी ।

कुमार ने कहा—हे माता ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हुई है तो इस विद्याधर को बंधन से मुक्त कर दें । यही मेरी इच्छा है । तुरन्त देवी ने विद्याधर को बंधन मुक्त कर कहा कि हे खेचर ! तेरे को बंधन मुक्त करा नवीन जन्म दिलानेवाले इस परोपकारी कुमार का पूर्ण आभार मान । बंधनमुक्त हो खेचरपति दोनों हाथ जोड़ नम्र वचन से कुमार को कहने लगा, हे परमार्थ वत्सल पुरुषोत्तम ! आप जैसे पुरुषों से ही यह पृथ्वी रत्नगर्भा कहलाती है । यह सत्य है कि आज मुझे आपकी कृपा से नया जन्म मिला है । आपने जीवितदान दिया उसके बदले में मै आपको कुछ भी दे सकूं इस योग्य नहीं हूं फिर भी मेरे पास यह प्रज्ञप्ति आदि दस विद्याएं है इन्हें ग्रहण कर मुझे कृतार्थ कीजिये ।

खेचरपति के आग्रह से कुमार ने विद्याएं ग्रहण की । पीछे विद्या के प्रभाव से दोनों मित्र आकाश मार्ग से आगे चले । आगे जाते २ वृक्षों की श्रेणियों से भरपूर और फल फूलों से

मन्दिर नाम के विशालनगर में वज्रवेग विद्याधर की वज्रदेव रानी से उत्पन्न हुई उनकी मैं शान्तिमति प्रिय पुत्री हूं। मेरे पिता की आज्ञा से इस वन में ही मैं हमेशा रहती हूं और इस चैत्य में भगवान् शान्तिनाथ व सरस्वती देवी की निरन्तर सेवा करती हूं। किसी नैमित्तिक के कहने के अनुसार आज मेरे पूर्व पुण्योदय से आपके दर्शन हुए। अब मेरी अन्तिम प्रार्थना यही है कि आप कृपाकर आज की रात यहीं रहें। प्रातःकाल मेरे पिता विवाह की सब सामग्री ले यहां आवेंगे।

मनइच्छित पत्र पढ़ कुमार को बड़ा हर्ष हुआ और प्रेम की निशानी के रूप में अंगूठी कुमारी के पास भेजी। पीछे वह दिन उसने विचार में ही व्यतीत कर दिया।

दूसरे दिन प्रभात में वज्रवेग राजा वहां आया। वह आदरपूर्वक कुमार को नगर में ले गया। पीछे बहुत उत्साह से शान्तिमति के साथ उसका विवाह कर दिया। कन्यादान में अपार धन दिया। विवाह के बाद कुमार वहीं रहने लगा।

एक बार लाट्योन्मत्त नाम के विद्याधर ने कुमार के मित्र का हरण किया इसलिए अरुणदेव कुमार ने प्रज्ञप्ति आदि विद्या के प्रभाव से विद्याधर के साथ युद्ध कर अपने मित्र को छुड़ाया। पीछे अपने पराक्रम से सब विद्याधरों की श्रेणी का राजा हुआ। सच है पुण्यशाली को पग पग पर सम्पदा और विजय मिलती है।

एक बार जयन्तस्वामि मुनि की धर्मदेशना सुन उसने मित्र और स्त्री सहित समकित मूल बारह व्रत ग्रहण किये। फिर सब शाश्वत और अशाश्वत जिनालयों में जिनबिम्बों की

वन्दना कर समकित निर्मल करने लगा। कुछ समय आनन्द-पूर्वक निर्गमन कर विद्याधर की श्रेणी का राज्य वज्रवेग के सुपुर्द कर मित्र और पत्नि सहित दिव्य विमान में बैठ आकाश मार्ग से मणिमन्दिर नगर में आया। माता-पिता को खबर मिलते ही उन्होंने हर्ष व उत्साह पूर्वक नगरी में प्रवेश कराया। कुमार ने विनयपूर्वक माता-पिता को नमस्कार किया। शान्तिमति ने भी विनयपूर्वक सास श्वसुर के चरण स्पर्श किए। माता-पिता पुत्र की सम्पदा को देख हर्षित हुए।

पीछे अरुणदेव को राज्यसिंहासन दे राजा ने मुनिप्रभ गुरु के पास चारित्र लिया। अरुणदेव न्याय पूर्वक प्रजा का पालन करने लगा। कुछ समय बाद राणी के पद्मशेखर पुत्र उत्पन्न हुवा।

एक दिन अरुणदेव बाहर उद्यान में घूमने निकले। इतने में उन्होंने लीलोद्यान उद्यान में शांतमुद्रा युक्त श्री मणिशेखर राजर्षि को देखा। उनको देखते ही राजा को जातिस्मरण ज्ञान हुआ जिससे उन्होंने अपना पूर्व भव निम्न प्रकार देखा।

शुक्तिमति नगरी में कोई महापापारंभी वैद्य रहता था। वह लोगों की अनेक प्रकार की चिकित्सा करता था। उसके यहां कोई एक तपस्वी मुनि औषध लेने आये। उसने उनको औषध दी जिससे उन कृपालु मुनि ने उसे धर्मोपदेश देते हुए कहा कि—

> गृहिणां गृहधर्मस्य, सारमेतत्परं स्मृतम् ।
> यथाशक्ति सुपात्रेभ्यो, दानं यच्छुद्धवस्तुनः ॥१॥

है। सामायिक से संयम निर्मल होता है, समकित शुद्ध होता है, वन्दन से गुरूजन की सेवा भक्ति होती प्रतिक्रमण से आत्मगर्हा होती है, कायोत्सर्ग से चारित्र के अतिचार दूर होते हैं और प्रत्याख्यान से तप की शुद्धि होती है।

गुरू से आवश्यक पद की आराधना का फल सुन राजर्षि मुनि अरुणदेव ने इसका नियम लिया। उपयोग पूर्वक सावधानी से छे आवश्यक क्रिया में प्रमादरहित उद्यम करते अनुक्रम से जिन नाम कर्म उपार्जन किया। मुनि की परीक्षा करने के लिए लक्ष्मीदेवी ने छः माह तक अनुकूल प्रतिकूल उपसर्ग किए फिर भी मुनि धैर्य से जरा भी स्खलित नही हुए। देवी के किए हुए उपसर्ग इस प्रकार थे।

एक दिन सैंकड़ों देव कन्याओं के परिवार सहित आकर हाव भाव और कटाक्षयुक्त नेत्रों से कामोद्दीपक वाक्यों से श्री लक्ष्मीदेवी कहने लगी कि हे स्वामि ! मैं आशापूर्ण हृदय से कामाग्नि से पीड़ित आपके पास आई हू सो आप कृपा कर मुझे विषयामृत पिला शांत करो। इस प्रकार कहने पर भी पत्थर पर पानी डालने के समान मुनि का दिल जरा भी नहीं पिघला। जब अनुकूल उपसर्गों से चलायमान नहीं हुआ तब प्रतिकूल उपसर्ग करना शुरू किया। फिर भी मुनि ने समभाव पूर्वक सब सहन किया। जब सब प्रकार के प्रयत्न व्यर्थ हो गये तब प्रगट हो क्षमा मांग स्तुति करने लगी।

हे मुनि श्रेष्ठ ! आपको धन्य है। मैंने अनेक प्रकार के अनुकूल प्रतिकूल उपसर्ग किये फिर भी आपका चित्त जरा भी विचलित नहीं हुआ। जगत् में द्रव्यावश्यक करनेवाले तो बहुत हैं परन्तु आपके समान भावावश्यक करनेवाले विरले ही होते हैं। हे महाभाग्य मुनिराज ! मैंने जो २ उपसर्ग किए उसके लिये क्षमा मांगती हूं।' इस प्रकार मुनि के गुणगान कर विनयपूर्वक वन्दना कर देवी अपने स्थान पर गई।

राजर्षिमुनि निरतिचाररूप से चारित्र का पालन कर, अन्त में अनशन कर, बारहवें देवलोक में समृद्धिशाली देव हुए। वहां से चव कर महाविदेह में तीर्थङ्कर पद प्राप्त कर मोक्ष जायेंगे।

ब्रह्मचारी स्वयं उज्वल रहता है। ब्रह्मचारी यदि मन्त्र विद्या साधन करे तो शीघ्र सिद्धी होवे। नारद के समान कलहकारी केवल ब्रह्मचर्य व्रत से ही तरता है। आगम में भी ब्रह्मचर्य व्रत को ३२ बड़ी उपमा दी हैं।

जैसे पर्वतों में मेरु है, धेनुओं में कामधेनु है, वृक्षों में कल्पवृक्ष है, रत्नों मे चिन्तामणी है, समुद्रों में क्षीरसागर है, लताओं में चित्रावली है, वश्यार्थ में मोहनवेलि है, धातुओं में सुवर्ण है, हाथियों में ऐरावत है, देवों में वीतराग है, सुरगणों में इन्द्र है वैसे व्रतों मे ब्रह्मचर्य व्रत बड़ा है ऐसी उपमा जिनराज ने स्वयं दी है।

चारित्र का मूल ब्रह्मचर्य है, समकित वृद्धि का कारण ब्रह्मचर्य है, दूसरे व्रत अपवाद रूप है, और ब्रह्मचर्य केवल उत्सर्ग ही है, इस कारण से दुष्करकारी शुद्ध ब्रह्मचारी को सदा हमारी वन्दना रहे और उक्त स्वरूप ब्रह्मचर्य व्रत का हम भी पालन करें। इस प्रकार स्तवन भावना करे और पारणा के दिन ब्रह्मचारी की तथा चतुर्विध संघ की भक्ति करे, स्वामिवात्सल्य, पधरावनी यथाशक्ति करे। इस पद की ओली पर्यन्त ब्रह्मचर्य नव बाड़ विशुद्ध पालन करे। अठारह हजार शीलाङ्गरथी की गाथा की शिक्षा करे। दूसरों को भी शील पालन करावे। ऐसा करने से संसार समुद्र से प्राणी अनायास ही पार होता है।

इस पद की आराधना से चन्द्रवर्मा राजा तीर्थङ्कर हुए जिनकी कथा इस प्रकार है।

बारहवें शीलव्रत पद आराधन पर चन्द्रवर्मा राजा की कथा

भरतक्षेत्र में अनेक जिनालयों से भरपूर मनोहर माकंदी पुर नगर था। वहां पराक्रमी चंद्रवर्मा राजा न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करता था। उसके रूपवती और गुणवान चंद्रावली रानी थी।

एक बार उस नगर के उद्यान में बहुत मुनियों के साथ चार ज्ञान को धारण करनेवाले श्री चक्रेश्वर आचार्य पधारे देवताओं ने मेरु शिखर जैसा मनोहर ऊँचा सुवर्ण का सिंहासन बनाया व उस पर गुरु महाराज बैठे। उद्यानपति ने गुरु महाराज के पधारने की सूचना राजा को दी। गुरू का आगमन सुन राजा बड़े ठाठ बाठ से परिवार सहित वंदना करने चला। जाते समय मार्ग में राजा ने समतारस के सिंधु समान, नेत्रों को आनन्द देनेवाले सुवर्ण की कांतिवाले दो मुनियों को कायोत्सर्ग में खड़े देखा। उनको यौवनावस्था में ऐसा दुष्कर व्रत का पालन करते देख राजा को विस्मय हुवा। पीछे गुरु के पास आ विनयपूर्वक वंदना कर योग्य आसन पर बैठ गुरु को पूछने लगा हे करुणानिधि! मैंने मार्ग में दो मुनियों को देखा। सुकुमार देह और यौवन वय होने पर भी उन्होंने चारित्र क्यों लिया? आप कृपा कर बताइये?

गुरु ने कहा हे राजन्! उनके वैराग्य का कारण ध्यान से सुन। कुशस्थलपुर नगर में लोक प्रिय और धनाढ्य मदन

मार्ग में भोजन के लिये एक बर्तन में सत्तू रख कर दे दिया। वह लेकर मदन सेठ अपने घर की ओर रवाना हुवा। मार्ग में एक सरोवर आया वहां सत्तू खाने बैठा और विचार करने लगा कि कोई अतिथि मिल जाय तो इसमें से थोड़ा उसे देकर पीछे खाऊँ। ऐसा विचार करता है इतने में एक तापस वहां आ पहुँचा। उसे थोड़ा सत्तू दे स्वयं पानी लेने सरोवर पर गया। इतने में वह तापस सत्तू खाने से बकरा हो गया। यह आश्चर्यजनक बनाव देख सेठ दिग्मूढ़ हो विचारने लगा कि इस दुर्गति के द्वार रूप स्त्री का ही यह कार्य है। स्त्रियों का स्नेह केवल अस्थिर और प्रपंचरूप है। इसीलिये कहा है

ग्रहचरियं रविचरियं, ताराचरियं चराचर चरियं।
जाणान्ति बुद्धिमंता, महिलाचरियं न जाणन्ति॥१॥
मच्छपयं जलपंथे, आकाशे पंछियाण पयपन्ति।
महिलाण हियमग्गो, तिनूवि लोए न दीसन्ति॥२॥

अर्थ—ग्रहों की चाल, सूर्य की चाल, ताराओं की चाल और चराचर पुरुषों का चरित्र ये सब बुद्धिमान् जान सकता है परन्तु स्त्री के चरित्र को कोई नहीं जान सकता। पानी में मच्छ के पैर, आकाश में पक्षियों की पद पंक्ति और स्त्री के हृदय का मार्ग ये तीनों इस लोक में नहीं देखे जा सकते।

मदन सेठ इस प्रकार विचार करता है इतने में वह बकरा काशीपुर तरफ भागने लगा। कौतुक देखने को सेठ भी जल्दी २ उसके पीछे चला। बकरा दौड़ता २ विद्युल्लता के

घर पहुंचा। मदन सेठ भी चुपचाप घर के आसपास कोई नहीं देख सके और खुद सब कुछ देख सके इस तरह छिप कर खड़ा रहा। बकरे को आया देख विद्युत्लता ने क्रोधित हो उसे खम्भे से बांधा और पीछे लकड़ी से मारने लगी। बकरा बिचारा बें बें कर चिल्लाने लगा। वह दुष्टा ज्यादा २ प्रहार कर कहने लगी कि जो कोई दूसरा भी सत्तू खावेगा उसे भी ऐसा ही दुःख भोगना पड़ेगा। बहुत देर पीछे उसे दुःखी जान मूल स्वरूप में लाई और आश्चर्य में हो पूछने लगी कि तू यहां कैसे आया! तापस ने सब हकीकत बताई। इसलियें विद्युत्लता मन में दुःखी हो विचारने लगी कि यह तो किसी के बदले किसी को दुःख मिला। पीछे तापस को जाने की आज्ञा दी।

यह घटना देखकर मदन सेठ मन में सोचने लगा कि यह तो पहले की दोनों स्त्रियों से भी आगे बढ़ी हुई है। मेरे दुर्भाग्य का अन्त ही नहीं है। घर से चला वन में गया तो जंगल में आग लगी, वहां से निकल यहां आया तो यह तीसरी उन दोनों से भी बढ़कर निकली। अब यदि घर जाऊं तो पहलेवाली मार डाले और यहां रहूं तो यह मार डाले। इसलिए राक्षसी समान इन स्त्रियों की मुझ जरूरत नहीं। अब तो और कहीं जाना चाहिए। ऐसा सोच वहां से निकल थोड़े दिनों में हसंतीनगर में पहुँचा। वहां चन्द्रमा की किरणों के समान सफेद रङ्गवाला मनोहर श्री ऋषभदेव का मन्दिर था। वहां जाकर उसने भगवान् के दर्शन किये।

मन्दिर से बाहर आ एक तरफ बैठ विचार करने लगा। इतने में वहां भगवान् की पूजा करने के लिए धनदेव सेठ आया। उसने मदन सेठ को उदासीन और विचार मग्न देख उसके पास जाकर पूछा हे भाई ! तुम कहां से आये हो ? यह क्यों बैठे हो ? ऐसा मालूम होता है कि तुम् बड़े दुःखी हो यदि ठीक समझो तो सारी बात मुझे कहो।

मदन सेठ ने उसकी विवेक पूर्ण बात सुन उसे गुणवान और कुलीन समझ अपना सम्पूर्ण हाल सुनाया। तब धनदेव बोला हे भाई ! स्त्री जाति प्रायः कपटी होती है। जो पूर्ण भाग्यशाली होता है वही स्त्री के मोह से दूर रह परमार्थ साधकर अपना कल्याण करता है। हे मित्र अब मैं दु:ख की बात कहता हूं उसे तु एकाग्र चित से सुन। ऐसा कह धनदेव ने अपनी कथा शुरू की।

इसी नगर में महान धनाढ्य और दानी धनपति सेठ रहता था। उसके धनसार और धनदेव दो पुत्र थे। कालान्तर में धनपति सेठ मर कर देवलोक में गया। पीछे दोनों भाइयों में कलह होने से अलग २ रहने लगे। लक्ष्मी भी धीरे २ लुप्त होने लगी व गरीबी धीरे २ आने लगी। इतने में धनदेव के एक स्त्री होते हुए भी उसने दूसरी शादी की। परन्तु उसे इस बात का आश्चर्य होने लगा कि ये दोनों सौत होने पर भी द्वेष रहित सगी बहिनों की तरह स्नेह से रहती है। वह सोचने लगा कि धनवान के घर में दो सौत भी स्नेह से नही रहती तो मुझ जैसे निर्धन के घर में बड़े

प्रेम पूर्वक रहती है इसलिए उसमें जरूर कोई भेद है और उसे छिपकर देखना चाहिये।

यह विचार कर एक दिन उसने झूठा ढोंग किया कि आज मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है इस वास्ते जल्दी सोना है। ऐसा कह उस रात्रि को जल्दी कपट निद्रा में सो गया। थोड़ी देर पीछे धनदेव को सोता जान पहलेवाली स्त्री नई से कहने लगी कि बहन अब जल्दी तैयार हो जा। यह सुनते ही नई अपना शृङ्गार कर हर्ष पूर्वक अपनी सौत के साथ जाने को तैयार हुई। दोनों स्त्रियां जल्दी २ नगर के बाहर जाकर एक आम के पेड़ पर चढ़ने लगीं। उनके पीछे २ धनदेव भी छिपता २ वहां आ पहुंचा। वे दोनों स्त्रिया वृक्ष के ऊपर जाकर बैठी। धनदेव भी पेड़ के तने में एक खोखला था उसमें बैठ गया। फिर वह पेड़ हवा की तरह आकाश मे उड़ने लगा। थोड़ी देर में वह पेड़ दक्षिण समुद्र को पार कर रत्नद्वीप के अन्दर रत्नपुर नगर के किले के पास आकर नीचे उतरा। तब वे दोनों स्त्रियां नीचे उतरने लगी। उनको उतरती देख धनदेव शीघ्र पास में छिप गया। दोनों स्त्रियां वृक्ष से उतर नगर में गई। उनके पीछे २ धनदेव भी चला। उस समय उस नगर में वसुदेव सेठ के श्रीदत्तकुमार और श्रीपुंज सेठ की पुत्री श्रीपति का लग्न होनेवाला था। इसलिये दोनों घरों में आनन्द और धाम धूम हो रही थी। उसे देखने के लिए अनेक स्त्री पुरुष इकट्ठे हुए थे। बरात भी ठाठ बाट से नगर में घूमती २ श्रीपुंज सेठ के घर आई। वर राजा तोरण पर पहुँचा। इतने में क्रूर कर्मों एवम् पूर्व पाप कर्मोदय

के कारण वर राजा को वही मृत्यु हो गई। अचानक पुत्र के मृत्यु से वसुदेव बड़ा दुखी हुवा। दुल्हन का परिवार भी दुखी हुवा। सब लोग शोकातुर हो अपने २ घर गये। इतने में श्रीपुंज सेठ ने देववाणी सुनी की हे सेठ तू तेरी पुत्री का विवाह तेरे घर के सामने छुपे हुए धनदेव के साथ आज ही कर देना क्योंकि यह कन्या उसी के योग्य है। यह सुनते ही श्रीपुंज सेठ ने धनदेव को ढूढ निकाला और उसके साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया। उस समय नगर में गई हुई धनदेव की दोनो स्त्रियां लग्न समय वहां आ पहुँची और विवाह मण्डप में अपने पति को देखा। उसे देखते ही आश्चर्य में हो दोनों कहने लगी कि अपना पति यहां कैसे आया? क्या यह अपने को धोखा देकर अपने पीछे २ आया है? परन्तु ऐसा नहीं हो सकता। बहुत से मनुष्यों को आकृति समान होती है इसलिए अपने को ऐसा लगता है। हजारों कोस दूर अपने नगर से वह यहां किस तरह आ सकता है? इस तरह दोनों ने अपना समाधान कर, लग्नोत्सव देख घर लौटने लगी।

लग्न पूर्ण होने पर धनदेव ने कन्या के वस्त्र पर कुंकुम से एक श्लोक लिखा।

कुत्र वसती रत्नपुर, कःक्वासौ गगन मंडनश्चूतः ॥
धनपति सुत धनदेवे, विधेर्वशात्सुखकृतेश्चूतः ॥१॥

अर्थः—रहने का स्थान रत्नपुर कहां? और आकाश का भषण रूपी यह आम्र कहा? परन्तु यह सब धनपति के पुत्र

नदेव के लिये दैवयोग से यह आम्र सुख देनेवाला हुवा।
ह लिख और किसी बहाने से बाहर निकल गुप्त रीति से
ीघ्र नगर के बाहर आया। वहां उसने स्त्रियों को जल्दी २
ाती हुई देखी। थोड़ी देर में सब आम्र के पास पहुँचे। दोनों
स्त्रियां जल्दी से पेड़ पर चढ़ गई। धनदेव भी पहले की तरह
पनी जगह बैठ गया। इतने में आम्र वृक्ष वायु वेग से गगन
ार्ग से होता हुवा अपनी जगह आकर रुक गया। तब धनदेव
स्त्रियों के पहुँचने से पहले घर पहुँच सो गया।

दूसरे दिन सवेरे जल्दी दूसरी स्त्री पति को जगाने गई।
वहां जाकर उसने देखा कि उसके हाथ में लच्छा और मेहंदी
और ललाट पर कुंकुम का टीका है। इसलिये वह तुरन्त
पहली स्त्री के पास जाकर कहने लगी कि बहन पति के हाथ
में लच्छा, मेहंदी और ललाट पर कुंकुम का टीका है।
इसलिये अवश्य रात्रि को रत्नपुर में श्रीमति के साथ व्याह
करनेवाले अपने पति है। इसमें जरा भी शंका नहीं। उन्होंने
गुप्त रीति से अपनी बातें जान ली है। अब क्या होगा?

पहली स्त्री ने कहा इसमें क्या है? ऐसा कह एक डोरा
मंत्रकर सोते हुए धनदेव के सीधे पैर पर बांध दिया। डोरा
बांधते ही वह तोता बन गया। उसे पकड़ पींजरे में रख दिया।

अब रत्नपुर नगर का हाल सुनिये कि वहां क्या हुवा।
जब धनदेव प्रातःकाल तक वापिस नहीं आया तब श्रीमति ने
अपने पिता को कहा। यह सुन श्रीपुंज सेठ दुखी हुवा। इतने
में सेठ की नजर श्रीमति के वस्त्र पर लिखे हुए श्लोक पर
पड़ी। श्लोक पढ़कर सेठ खुश होकर बोला हे पुत्री! देख तेरे

वस्त्र पर तेरे पति ने श्लोक लिखा है उससे उसका नाम और नगर का पता चलता है। वह हसंतीपुर नगर के धनपति सेठ का पुत्र धनदेव है। वह किसी कारण वश रात्रि को ही वापिस चला गया है। अब अपने का पता लगाना चाहिये। तू जरा भी चिंता मत कर। उसी दिन सागरदत्त व्यापारी अपने जहाज लेकर हसतीपुर जानेवाला था। उसके साथ श्रीपुंज सेठ ने एक पत्र और बहुमूल्य हार धनदेव को देने के लिए सागरदत्त को दिया। सागरदत्त का जहाज अनुकूल पवन होने के कारण शीघ्र ही हसतीपुर पहुँच गया। वहां आकर धनदेव का पता लगा, उसके घर जाकर पूछा कि धनदेव सेठ है क्या ?

घर में से स्त्रियों ने जवाब दिया कि नहीं है, वे तो राज्य कार्य से ताम्रलिप्त नगर गये हैं। आप कहां रहते हो और क्या काम है ?

सागरदत्त ने कहा कि मै रत्नद्वीप के रत्नपुर नगर का व्यापारी हूँ। वहाँ से श्रीपुंज सेठ ने धनदेव सेठ को यह पत्र और हार भेजा है।

स्त्री ने कहा बहुत अच्छा लाओ। सेठ जाते समय कह गये थे कि यदि कोई रत्नपुर जानेवाला हो तो उसकी साथ यह तोता श्रीमति के पास भेज देना। इसलिये तुम यह तोता श्रीमति को दे देना। यह कह पत्र व हार लेकर तोते का पींजरा सागरदत्त को दे दिया।

सागरदत्त पींजरा ले थोड़े दिनों बाद अपने नगर में आया और पींजरा सेठ को दे जो कुछ हुआ वह सब कह सुनाया। सेठ ने वह तोता श्रीमति को दे दिया। श्रीमति निरन्तर उसे

अपने पास रखती और विनोद करती। एक दिन तोते के पैर में डोरा बंधा देख उसे तोड़ डाला। डोरा टूटते ही धनदेव अपने असली रूप में प्रगट हो गया। यह देख सब आश्चर्य में हो पूछने लगीं कि ऐसा होने का क्या कारण है ? धनदेव ने कहा कि यह सब कर्मवश हुवा है। ऐसा कह अपनी स्त्रियों की बात नहीं कही। कुछ दिन सुख पूर्वक श्रीपुंज सेठ के यहां रह पीछे श्रीमति को ले अपने नगर में आया। परन्तु पहले की बात याद न कर सुखपूर्वक तीनों स्त्रियां साथ में रहने लगीं।

एक दिन श्रीमति सुवर्ण थाल में पति के पैर धो रही थी। पैर धोने के बाद थाल का पानी पहले की स्त्री ने जमीन पर फेंक दिया। फेंकते ही पानी चारों तरफ धीरे २ समुद्र की तरह बढ़ने लगा। क्षण २ में पानी को बढ़ता देख धनदेव हृदय में घबराने लगा।

श्रीमति ने यह देख अपनी शक्ति से पानी की माया को समेट ली। यह देख धनदेव विस्मित हो सोचने लगा कि यह तीसरी स्त्री तो इन दोनों से भी शक्तिशाली है। मेरे दुष्ट कर्मों के उदय से ही ऐसी स्त्रियां मिली हैं। श्रीमति की ताकत को देख पहले की दोनों स्त्रियां उसकी आज्ञा में प्रीतिपूर्वक रहने लगीं और धनदेव हमेशा उससे डरता हुआ रहने लगा।

इस प्रकार कह वह मदन सेठ से बोला हे मित्र मैं ही धनदेव हूं कि उन जीवित बलाओं के पास हमेशा रह डरता हूं और उनको छोड़ भी नहीं सकता।

धनदेव का सारा दृष्टान्त सुनकर मदन सेठ कहने लगा कि अरे ! वे पुरुष धन्य है जो स्त्रियों के मोह में नहीं फंसकर सब ममत्व को छोड शीयलव्रत को ग्रहण कर शान्ति प्राप्त करते हैं। इतने में वहा हमारे आने की सूचना मिलने पर वे दोनों हमारी धर्म देशना सुनने आये। देशना सुन हमारे पास चारित्र ग्रहण किया। धीरे २ ग्यारह अङ्ग का अध्ययन कर, समिति गुप्तियुक्त निरतिचार से संयम का पालन करने लगे। हे राजन् रास्ते मे जिन दो मुनियों को तुमने ध्यान में खड़े देखा थे वही भाग्यशाली हैं।

राजा ने कहा हे प्रभु ! आपने यौवनावस्था में दीक्षा क्यों ली ? गुरु ने कहा हे राजन् ! गृहस्थाश्रम में सर्वथा षट्काय जीवों की रक्षा नहीं हो सकती क्योंकि घर में रहने से घर, घटी आदि अनेक अधिकारों से महा पापारम्भ होता है और उनसे षट्काय जीवों की हिंसा होती है। एक वार स्त्री संभोग से नौ लाख प्राणियों की हिंसा होती है। जगत में जीवों की रक्षा करनेवाले तो अनेक पुरुष मिल जाते है परन्तु मैथुन सेवन मे मरनेवाले जीवों को अभयदान दे मैथुन को त्याग करनेवाले पुरुष विरले ही होते हे।

गुरु से उपदेश सुन राजा चंद्रवर्मा को प्रतिबोध हुवा। गुरु को वंदन कर राजमहल में जा अपने पुत्र चंद्रसेन कुमार को राजगद्दी दे जिनमंदिर में बड़ा उत्सव कर गुरु से चारित्र ग्रहण किया। फिर ग्यारह अंग का अध्ययन कर समिति गुप्ति पूर्वक शुद्ध चारित्र का पालन करने लगा। एक दिन गुरु से बीसस्थानक की महिमा सुनी कि यदि कोई बीसस्थानक पद

को आराधना करता है वह संसार भ्रमण को दूर करनेवाले त्रैलोक्यवंद्य जिन नाम कर्म का उपार्जन कर मोक्ष प्राप्त करता है। इसमें भी जो वारहवें स्थानक की आराधना कर शीयल-व्रत का पालन करता है वह शीघ्र जिन नामकर्म का उपार्जन करता है। क्योंकि सब व्रतों में शीयलव्रत सब से ज्यादा श्रेष्ठ बतलाया है।

इस प्रकार गुरु से शीयलव्रत की महिमा सुन राजर्षि मुनि नववाडयुक्त शीयलव्रत का पालन करने लगा। किसी भी स्त्री के सामने सराग दृष्टि नहीं डालता। स्त्री संबंधी वर्णन व उस संबंधी कथा वार्ता का भी त्याग कर स्थिर चित्त से शीयलव्रत का पालन करने लगा।

एक दिन देवसभा में इन्द्र महाराज ने राजर्षि मुनि की प्रशंसा कर कहा कि मुनियों में शिरोमणी राजर्षि चंद्रवर्मा मुनि को धन्य है। वह देवेन्द्र के चलायमान करने पर भी अपने व्रत से चलायमान नहीं होता है। सुरेन्द्र के मुंह से मुनि की स्तुति सुन मुनि की परीक्षा करने के लिये विजयदेव देवता जहां राजर्षि मुनि कायोत्सर्ग करके खड़े थे वहां आया। वहां आकर अनेक अप्पसराओं को इकट्ठी की। अप्सरायें अनेक प्रकार के हाव भाव और कटाक्ष कर मुनि के पास आकर प्रार्थना करने लगी कि हे स्वामी! पुण्य से प्राप्त हुए इस यौवनवस्था में योग को छोड़ भोग विलास करो। आप सब जीवों पर करुणा करनेवाले हो, हम आपके पास आशा लेकर आई है, इसलिये हमें निराश व. दुःखी न कर हमको स्वीकार करो। इस प्रकार अनेक प्रकार के कामोद्दीपक वचन कहने लगी। फिर

भी मुनि का मन जरा भी विचलित नहीं हुआ। अन्त में देव ने प्रकट हो मुनि की स्तुति कर, गुरु महाराज के पास जाकर पूछा कि हे प्रभु! राजर्षि मुनि को दृढ़ शीयलव्रत पालने का क्या फल मिलेगा। गुरु महाराज ने कहा इस महाभाग्य को शीयल के प्रभाव से त्रैलोक्य पूज्य जिन पद प्राप्त होगा। शीयल की महिमा सुन देव अपने स्थान पर गया। चन्द्रधर्मा मुनि काल धर्म पा ब्रह्मदेवलोक में देवता हुए। वहां से चवकर महाविदेह क्षेत्र में पुण्डरिकिणी विजय में पुष्कलावती नगरी मे तीर्थंकर पद प्राप्त कर मोक्ष में जावेंगे।

त्रयोदश क्रिया पद आराधन विधि।

"ॐ नमो किरियाणं" इस पद की २० माला गिनें।

इस पद के २५ खमासमण देवे। प्रत्येक खमासमण से पूर्व यह दोहा कहें।

दोहा

आतमबोध बिनु जे क्रिया, ते तो बालक चाल।
तत्वार्थ थी धारिये, नमो क्रिया सुविशाल॥

१ अशुद्ध कायिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नमः
२ अधिकरण की क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नम
३ परिताप की क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नम
४ प्राणातिपात की क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नमः
५ आरम्भिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नमः
६ परिग्रहकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नमः
७ माया प्रत्ययिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नमः
८ मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नमः
९ अपच्चक्खाण की क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नमः
१० दृष्टिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नमः
११ स्पृष्टि की क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नमः

१२ प्रातित्यकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नमः
१३ सामन्तोपनिपातकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नमः
१४ नैसृष्टिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नमः
१५ स्वहस्तकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नमः
१६ आणवणीकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नमः
१७ विदारणकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नमः
१८ अनाभोगप्रत्ययिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नमः
१९ अणवकखप्रत्ययिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नमः
२० आज्ञापन प्रत्ययिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नमः
२१ प्रयोगिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नमः
२२ समुदायिकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नमः
२३ प्रेमकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नमः
२४ द्वेषकी क्रिया प्रवर्तन रहिताय क्रिया गुणवते नमः
२५ इरियावथिकी क्रिया प्रवर्तन शुद्धाय महामुनये नमः

उक्त खमासमण देकर २५ लोगस्स का कायोत्सर्ग करें।

स्तुति

जगत में सम्यग क्रिया निर्जरा का हेतु है। श्री जिनेन्द्रशासन की स्थिति क्रियारूप से रही है। सकल शुद्ध

व्यवहार क्रियात्मक है। स्याद्वाद मार्ग की क्रिया मोक्ष का मुख्य हेतु है। सम्यग् ज्ञान क्रियामय है, सम्यग् ज्ञान दर्शन से शुद्ध क्रिया शोभा देती है। असंख्यात जो मुक्ति के कारण कहे हैं वे सब क्रिया के भेद से हैं। अनेक गति के तप भी क्रिया भेद से है। सम्यग् क्रिया करे तो अक्रिय पद को पावें, सम्यग् ज्ञानी शस्त्र सुभट रूप है। जैसे बड़ा बलवान सुभट भी बिना शस्त्र के शत्रु को नहीं जीत सकता, वैसे सम्यग् क्रिया के बिना प्राणी कर्म का क्षय नहीं कर सकता, (ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः) । इससे आगम में क्रियारुचि जीवको अल्पससारी कहा है,मिथ्यादृष्टि भी केवल सम्यग् क्रिया करे तो नवम ग्रैवेयक तक जाता है। शुद्ध श्रद्धावाले धर्म प्रिय जो जीव 'क्रिया के कारण बहु आदरवाले हैं। वे धर्म को इष्ट समझकर क्रिया करते हैं, सो भावधर्म है। प्रभु के आज्ञारूप दान, शील, तप भावना रूप मुक्ति का मुख्य साधन जिस समय सम्यग् क्रिया से की जाय तो वह हमारा सम्बल रूप है, धर्म प्राप्ति का अवश्य बीज है,इससे सम्यग्ज्ञान क्रियावाले को प्रति क्षण हमारी वन्दना है।

इस प्रकार से स्तुति करके स्थिर चित्त से यदि उस दिन पोषध बने तो बहुत उत्तम, नहीं तो पांच सात सामायिक करे, सावद्य क्रिया न करे, न करावे मन, वचन, काया को गुप्त रखे पारणे में मुनियों को दान दे,उपधान प्रमुख क्रिया का उत्सव करे, आवश्यकादि क्रिया का आदर करे करावे। घर में शुभ क्रिया करे, ऐसा करने से मनुष्य को अभिमत फल मिलता है।

इस पद की आराधना से हरिवाहन राजा तीर्थंकर हुए जिनकी कथा इस प्रकार है।

देखते ही सभासद स्थिर दृष्टि से उसकी तरफ देखने लगे। मगधसुन्दरी ने सभा में आकर कणेर फूल में सुई लगा उसे जमीन पर उलटी रख उस पर नाच किया तथा और भी विविध प्रकार से अप्सराओं की तरह दिव्य नृत्य किया। इसे देख राजा और सब सभासद प्रशंसा करने लगे और कहा कि समस्त कलावान नायिकाओं में मगधसुन्दरी नायिका प्रधान है। ऐसा कह उसे उत्तम पारितोषिक दिया। प्रमाद रहित इष्ट कार्य की सिद्धि में तत्पर रह मगधसुन्दरी ने विजय प्राप्त की और प्रमाद से मगधसेना पराजित हुई। इसी तरह जो कोई भव्यजन पुन्य कार्य के लिये प्रमाद रहित उद्यम करता है उसे अन्त में इच्छित वस्तु प्राप्त होती है। इसलिये हे भव्य जीवो! तुम प्रमाद को छोड़ धर्म कार्य में उद्यम करो।

गुरु की देशना सुन हरिवाहन राजा को संवेग प्राप्त हुवा और युवराज मेघवाहन को राज्य दे अन्तःपुर सहित गुरु के पास चारित्र लिया। फिर राजर्षि मुनि ने द्वादशांगी का अध्ययन किया और निर्मल संयम का पालन करने लगा।

एक बार गुरु से बीसस्थानक सम्बंधी व्याख्यान सुना। उसमें तेरहवें शुभध्यान पद के बारे में सुना कि जो कोई समतापूर्वक सम्यग भावयुक्त स्थिर चित्त से निर्मल ध्यान करता है वह प्राणी अल्प समय में लोकोत्तर लक्ष्मी को प्राप्त करता है। गुरु मुख से यह श्रवण कर राजर्षि मुनि हर्षपूर्वक तेरहवें ध्यान पद की आराधना करने लगा। प्रमाद रहित निःकषाय हो स्थिर चित्त से निरन्तर मौन प्रतिमा धारण कर उज्जवल लेश्या से शुभ ध्यान करने लगा।

एक दिन शक्रेन्द्र ने देव सभा में राजर्षि मुनि की प्रशंसा करते हुए कहा कि मेरु की तरह निःप्रकम्प चित्त से ध्यान में रहे हुए राजर्षि हरिवाहन मुनि को ध्यान से गिराने में देव भी असमर्थ है। सुरपति के मुख से प्रशंसा सुन इन्द्र की एक अग्र महिषी को विश्वास नहीं हुवा और वह मुनि की परीक्षा करने को देवांगनाओं के समूह सहित जहां मुनि ध्यान कर रहे थे गई। विविध प्रकार के नृत्य और संगीत का आयोजन किया जिसे देख कोई भी हीन सत्ववाला प्राणी तुरन्त चलायमान हो जाय। परन्तु महान् धैर्यवान राजर्षि मुनि तो केवल नासाग्र दृष्टि रख निर्मल ध्यान में लीन रहे। नृत्य कला की तरफ तो दृष्टि भी नहीं की। इस तरह उन देवियों ने छः माह तक नाटक किया परन्तु मुनि जरा भी विचलित हुए विना ध्यान में ही लीन रहे। जब मुनि जरा भी विचलित नहीं हुए तो इन्द्राणी प्रगट हो मुनि की प्रशंसा कर अपने स्थान पर गई। हरिवाहन मुनि ने निर्मल ध्यान के प्रभाव से जिन नाम कर्म उपार्जन किया और काल धर्म पा सनत्कुमार देवलोक में देवता हुए। वहां से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जिन पद प्राप्त कर मोक्ष जावेंगे।

चतुर्दश तप पद आराधन विधि

"ॐनमो तवस्स" इस पद की २० माला गिने।

इस पद के १२ खमासमण देवे। हरेक खमासमण से यह दोहा कहे।

दोहा

कर्म खपावे चीकणा, भाव मङ्गल तप जाण।
पचास लब्धि उपजे, जय जय तप गुण खान॥

१ अणसणाभिध तपयुक्ताय बाह्यतप गुणाय नमः
२ उनोदरि तपयुक्ताय बाह्यतप गुणाय नमः
३ वृत्तिसंक्षेप अनेक विध अभिग्रह धराय बाह्यतप गुणाय नमः
४ रसत्यागरूप तप युक्ताय बाह्यतपो गुणाय नमः
५ कायक्लेश लोचादिक कष्ट सह काय बाह्यतप गुणाय नमः
६ संलीनता शरीर संकोचाय बा तपह्य गुणाय नमः
७ प्रायश्चित ग्राहकाय अभ्यंतर तप गुणाय नमः
८ विनय गुण युक्ताय अभ्यंतर तप गुणाय नमः
९ वैयावच्च गुण युक्ताय अभ्यंतर तप गुणाय नमः
१० सज्जाय ध्यान युक्ताय अभ्यंतर तप गुणाय नमः
११ आत्म ध्यानरूप अभ्यंतर तप गुणाय नमः
१२ कायोत्सर्ग रूप अभ्यंतर तप गुणाय नमः

उक्त खमासमण देकर १२ लोगस्स का कायोत्सर्ग करे।

स्तुति

सम्यग तप, कठिन कर्म रूप जंजीरे तोड़ने के लिए वज्र का मुद्गर है। अति कठिन निकाचित् कर्मफल देकर छूटता है, अथवा सम्यग् तप से छूटता है। अनन्तर बलवान शासनाधीश सकल विज्ञान भास्कर सुरासुर सेवित चरणारविन्द निश्चय चरम शरीरी परमेश्वर ने भी कठिनतम तप करके कर्म को छेदन किये हैं।

तप से विचित्र लब्धि, अष्ट महासिद्धि प्राप्त होती है। चक्रवर्ती प्रमुख पदवी तप का फल है। तपस्वी का वचन निष्फल नहीं होता। चारित्री तपोधन कहे जाते हैं, दृढ़ प्रहारी चिलाती पुत्रकाल कुमारादि १० महा पाप कर्ता तप के बल से थोड़े काल में केवलज्ञान पाकर संसार से तर गए। इच्छानिरोध करके क्षमायुक्त तप करे तो साधकता को कोई पदवी दुष्कर नहीं है। तपस्वी मुनि शासन के दीपक समान है। सर्व दार्शनिक को वन्दनीय होता है। तपस्वी से मिथ्यात्व भी डरते रहते हैं–आसातना नहीं करते। शासन का उच्छेद करने को नमुचि नामका पुष्ट मिथ्यात्वी उद्धत था उसको विष्णुकुमार ने शिक्षा देकर शासन की स्थिर शोभा की। अष्टम तप प्रभाव से देवता आप खड़े रहते हैं जो व कहे सो कार्य करते हैं। नागकेतु की अष्टम तप के प्रभाव से धरणेन्द्र ने आकर स्वयं रक्षा की। तपस्वी मुनि शासन में बड़े महान् है, उन्हीं से गच्छ की शोभा है। इस कारण मुक्ति का परम अवन्घ कारण परम मङ्गलरूप तप पद को हमारी सदा वन्दना है

वाला यह उत्तम मानव जन्म पूर्व पुण्य के संयोग से मिलता है। जो धर्मरहित प्रमाद में ही जन्म व्यतीत करता है वह मूढ सुवर्ण के थाल में धूल डालता है, अमृत से पग प्रक्षालन करता है और कौए को उड़ाने के लिये चितामणी रत्न फेंकता है—ऐसा समझना चाहिये। यह सम्पूर्ण संसार मोह रूप मदिरा से घोर निद्रा में पडा हुवा है और उस पर विकराल यमराज मुंह फाडे खड़ा है। इसकी किसी को भी क्या खबर है कि यह यमराज कब और किसको अपने विशाल उदर में डाल लेगा। इसलिए हे भव्य जनो! मोहरूप निद्रा से जागृत हो धर्म कार्य में उद्यम करो।

गुरु मुख से देशना श्रवणकर राजा दोनों हाथ जोड़ नम्रता से बोला। हे स्वामी! यह मेरा पुत्र सर्व कलाओं में निपुण है परन्तु वह धर्म से विमुख है। इसलिये हे कृपासिंधु! मेरे इस पुत्र को कभी धर्म रूचि होगी या नहीं?

गुरु ने कहा राजन्! तू इस बारे में चिंता न कर। क्योंकि जीव अपने कर्मों के कारण ही धर्मी या अधर्मी होता है। जिसकी जैसी गति होनेवाली होती है वैसी ही उसकी बुद्धि हो जाती है। चाहे सूर्य पूर्व से पश्चिम में उदय होने लगे, समुद्र अपनी मर्यादा छोड़ दे, मेरु चलायमान हो जाय फिर भी भवितव्यता भूंठी नहीं होती। इसलिये जब भवितव्यता परिपक्व होती है तब प्राणी को धर्म पर रुचि उत्पन्न होती है।

यह सुन राजा ने कहा कि हे प्रभु! जो भवितव्यता पर ही आधार रख बैठा जाय तो फिर रोगी को रोग को

चिकित्सा और भूखे मनुष्य को भोजन की क्रिया नहीं करना चाहिये क्योंकि भवितव्यता परिपक्व होने पर अपने आप सब ठीक हो जायगा।

यह सुन सूरि महाराज ने कहा हे नरेश ! द्रव्य क्षेत्रादि की सामग्री सिवाय मनुष्य धर्म को प्राप्त नहीं कर सकता। इस पर एक दृष्टांत कहता हूँ सो सुनो। एक समय तीन मुनियों ने केवली भगवान के पास आकर पूछा कि हे प्रभु ! हमको कभी मोक्ष मिलेगा या नहीं ? केवली भगवान ने उत्तर दिया कि हे महाभाग्य ! तुम इसी भव में सब कर्मों का क्षय कर मोक्ष प्राप्त करोगे। ज्ञानी का वचन कभी झूठा नहीं होता ऐसा सोच तीनों मुनियों ने चारित्र छोड़ गृहस्थ बन विषय सुख भोगने लगे। जब भोगावली कर्म क्षय हो गये तब वे भोग से विरक्त हो अपने किए आचरणों की निंदा करने लगे। पीछे पुनः चारित्र ग्रहण कर शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि से कर्ममल का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया और मोक्ष गये। इसी तरह तुम्हारा पुत्र भी कर्म क्षय होने पर इसी भव में धर्म रुचिवाला होगा और फिर तीसरे भव में महाविदेह क्षेत्र में अनेक जीवों का उपकार करनेवाला तीर्थंकर पद प्राप्त कर मोक्ष में जायगा।

गुरु से यह वृत्तान्त श्रवणकर राजा को वैराग्य प्राप्त हुवा। इससे कुमार कनककेतु को राज्य दे बड़े उत्सव सहित संसार का नाश करनेवाला निर्मल चारित्र ग्रहण किया। धीरे २ घोर तपस्या व निर्मल ध्यान से कर्मों का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया।

कनककेतु राजा नाना प्रकार के विषय सुख भोगता हुवा न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करने लगा। कुछ समय बाद एक दिन राजा के शरीर में तीव्र दाह ज्वर उत्पन्न हुवा। उसकी पीड़ा से निरन्तर निद्रा रहित अत्यंत दुख पाने लगा। अनेक उपचार करने पर भी व्याधि शांत नही हुई। एक दिन रात्रि में किसी के मुंह से निम्नांक श्लोक सुना कि—

सुखाय सर्वजंतुनां, प्रायः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥
न धर्मेण बिना सौख्यं, धर्मश्चारंभवर्जनात् ॥३॥

अर्थः—सर्व जतुओं की प्रवृति सुख के लिये होती है। परन्तु सुख धर्म बिना नही मिलता और धर्म भी आरंभों को छोड़ने से होता है। सारांश यह है कि सुख चाहनेवाले पुरुषों को धर्म की तरफ मन लगाना चाहिये।

व्याधि से पीड़ित कनककेतु राजा ने जब उक्त श्लोक सुना तो वैराग्य उत्पन्न हुआ और सोचने लगा कि यदि मेरी व्याधि शांत हो जायगी तो अनेक आरम्भ और पाप से भरे इस राज्य को छोड़ सवेरे ही शास्वत सुख को देनेवाला चारित्र ग्रहण करूंगा। ऐसे शुभ विचार मात्र से ही राजा का रोग दूर हो गया और उसे सुखपूर्वक नींद आई। प्रातःकाल सब मंत्रियों को बुला अपना विचार बतलाया। मंत्रियों ने राजा के विचार का अनुमोदन किया। पीछे राजकुमार मलयकेतु को राजसिंहासन पर बिठा सुपात्रों को दान दे अपार धन सद्मार्ग में व्यय किया। जिनमंदिर में महान् उत्सव कर बहुत से मंत्रियों और सामन्तो आदि के साथ श्री शांतिसूरि

महाराज के पास चारित्र ग्रहण किया। फिर गुरु से द्वादशांगी का अध्ययन कर शुद्ध चारित्र का पालन करने लगा।

एक दिन गुरु से बीस स्थानक सम्बंधी व्याख्यान सुना कि जो कोई अरिहंत की भक्ति सहित बीसस्थानक की आराधना करता है वह अन्त में जिनपद प्राप्त करता है। उसमें भी चौदहवें तप पद की आराधना विधि सहित करता है उस प्राणी को जैसे लंघन करने से शरीर के उपचित दोषों का नाश होता है वैसे दुष्कर तपस्या से क्लिष्ट कर्मों का नाश होता है। गुरु मुख से व्याख्यान सुन कनककेतु मुनि ने यह अभिग्रह लिया कि जहां तक यह शरीर है वहां तक निरन्तर द्वादशभेद तप करना, जघन्यचौयभक्त से लेकर उत्कृष्ट छः मास पर्यन्त तपस्या करना। इस तरह विधिसहित त्रैकाल देववन्दन और पारणे आयम्बल करना। ऐसा अभिग्रह लेकर मुनि निरन्तर सन्तोष और धैर्य से तपस्या करने लगा।

निरन्तर घोर तपस्या करने से मुनि का शरीर तो कमजोर होने लगा परन्तु मुंह का तेज दिन प्रतिदिन सूर्य की तरह तेजस्वी होने लगा। एक बार ग्रीष्म ऋतु की प्रचण्ड गर्मी में मुनियों के साथ विहार कर शंखपुरी के पास जाकर सूर्य सन्मुख आतापना लेने लगे। उस समय देवसभा में इन्द्र महाराज मुनि की प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि अरे! मुनियों में श्रेष्ठ कनककेतु मुनि धन्य है कि जो घोर तपस्या करते हुए भी जरा भी अनेषणीय भातपाणी ग्रहण नहीं करते। ऐसा कह [illegible] इन्द्र ने भावपूर्वक वन्दना की।

इन्द्र द्वारा मुनि की प्रशंसा सुन वरुण लोकपाल को विश्वास नही हुआ इसीलिए मुनि की परीक्षा लेने को उनके पास आया। वहां आकर खेर के अंगारे के समान उष्ण रेत कर दी और जहां २ मुनि गोचरी के लिये जाते वहां सब जगह गोचरी को अशुद्ध कर देता। इस तरह रात दिन कष्ट होने लगा। फिर भी समता के सिन्धु राजर्षि मुनि विषाद रहित हो सब सहन करते। छः माह तक देव ने उपसर्ग चालू रखा और मुनि बिना आहार के दिन निर्गमन करते। गुरु महाराज ने ज्ञानोपयोग से देवोपसर्ग जान कनककेतु मुनि को दूसरे दिन उसी नगर में ब्रह्मचर्य को पालन करनेवाले धनंजय सेठ के घर गोचरी के लिए भेजा। क्योंकि जो निर्मल शीलवान होते हैं उनके यहां देव भी उपसर्ग नही कर सकते। गुरु महाराज की आज्ञा से दूसरे दिन मुनि धनंजय सेठ के घर गोचरी के लिए गये और वहा से शुद्ध आहार पाणी ग्रहण किया। यह देख वरुणदेव ने उस घर में सुवर्ण की वृष्टि की और प्रत्यक्ष हो मुनिराज की स्तुति कर क्षमा मांग गुरुमहाराज के पास आकर पूछने लगा कि हे प्रभु! कनककेतु मुनि को इस घोर तपस्या का क्या फल मिलेगा? इस पर गुरु महाराज ने कहा हे देव! यह मुनि इस तप के प्रभाव से, तीर्थङ्कर होंगे। गुरु मुख से यह सुन देव अपने स्थान पर लौट गया। राजर्षि मुनि वहां से काल कर चौथे देवलोक के सुख भोगकर महाविदेह क्षेत्र में जिनपद प्राप्त कर चिदानन्द पद प्राप्त करेंगे।

पंचदश गौतमपद आराधन विधिः

"ॐ नमो गोयमस्स" इस पद की २० माला गिने।

इस पद के ११ खमासमण देवे । प्रत्येक खमासमण से पूर्व यह दोहा कहे ।

दोहा

छठ्ठ छठ्ठ तप करे पारणो, चउनाणो गुणधाम ।
येसम शुभ पात्र को नहीं, नमो नमो गोतम स्वाम ।।

१ श्री गौतम गणधराय नम.
२ श्री अग्निभूति गणधराय नमः
३ श्री वायुभूति गणधराय नमः
४ श्री व्यक्तस्वामि गणधराय नमः
५ श्री सुधर्मा स्वामि गणधराय नमः
६ श्री मण्डितस्वामि गणधराय नमः
७ श्री मौर्यपुत्रस्वामि गणधराय नमः
८ श्री अकम्पितस्वामि गणधराय नमः
९ श्री अचलभ्रातृ गणधराय नमः
१० श्री मेतार्यस्वामि गणधराय नमः
११ श्री प्रभासस्वामि गणधरायनमः
१२ चतुर्विंशति तीर्थङ्कराणां चतुर्दशशत द्विपंचाशद गणधरेभ्यो नम

उक्त खमासमण के बाद १२ लोगस्स का कायोत्सर्ग करे,

स्तुति

स्वनिबद्ध गणधर नाम कर्म विपाक प्राप्त तीर्थङ्करों को प्रथम देशना प्रभु के मुख से श्रवण करके परम वैराग्य से उल्लसित चित्त होकर श्री जिनेश्वरजी के हाथ से दीक्षा ग्रहण कर और परमेश्वर को तीन बार प्रदक्षिणा करके खमासणा देकर कहे कि हे भगवन्, हे इच्छाकारिन् वाचना प्रसाद दीजिए। एसी परमेश्वर से वाचना मांगे और उसी समय इन्द्र वज्रमणि के थाल में चन्दन आदि ४२ सुगन्धित द्रव्य चूर्ण भरकर निकट खड़ा रहे तब परमेश्वर सिंहासन से कुछ उठकर थाल में से चूर्ण उठाकर मुख्य गणधर के सिर पर डाला, 'उपन्नेवा' उच्चारण करते हुए दूसरे गणधरों के सिर पर भी वासक्षेप डाला, तब गणधरों को लब्धि प्रगट हुई। सब गणधरों की दृष्टि में जितने जीव पदार्थ की उत्पत्ति है सो सब देखने में आती है, तब गणधर विचार करते हैं कि ये अनन्त उत्पाद कहां प्रवेश करेगा, तब फिर खमासणा पूर्वक प्रदक्षिणा करके वाचना मांगता है तो फिर प्रभुजी पूर्ववत् 'विघनेवा' इस पद को उच्चारण करते हुए वासक्षेप डालते हैं, तब गणधरों को विनाश को प्राप्त होती हुई चीजें देखने में आती है। जो उत्पन्न होता है वह विनष्ट होता है। इस प्रकार प्रति समय विनाश देखकर विचारते हैं कि जब ऐसे अनन्त विनाश हो रहा है तब क्या होगा। फिर पूर्वोक्त प्रकार से वाचना मांगते हैं, और प्रभुजी पूर्ववत् 'ध्रुवेवा' ऐसा उच्चारण करके वासक्षेप गणधरों के सिर पर डालते हैं, तो गणधरों को दृष्टि में ये पदार्थ भासते हैं,

और एक नवीन पर्याय उत्पन्न होती है और पूर्व पर्याय का नाश होता है। इस प्रकार वस्तु का उत्पाद, व्यय ध्रौव्य का ज्ञान रूप त्रिपदी को पाकर गणधर द्वादशांगी की रचना करते हैं। इसमें ५ अधिकार है सो सब सूत्र की रचना करते हैं। बारहवां अङ्ग दृष्टिवाद है सो सम्पूर्ण गणधर लब्धिवन्त को होता है। चौदह पूर्व जिसका एकदेश है ऐसे गणधर भगवान् चार ज्ञान, अनेक लब्धि सम्पन्न तीर्थङ्कर की उपमा को पाते हैं, शासन व्यवहार की स्थापना श्री गणधर कृत होती है।

इससे चौवीस तीर्थङ्करों के १४५२ गणधरों को हमारी नित्य त्रिकाल वन्दना है। इस प्रकार गणधर की स्तुति करके पीछे पात्र, महापात्र, मध्यम पात्र, जघन्य पात्र का विचार करे। वह रत्नपात्र महामुनि है, सुवर्ण पात्र देशविरति समकिती है, ताम्र पात्र मार्गानुसारी है, लोहपात्र अज्ञान नष्ट करनेवाले तपस्वी हैं और शेष अज्ञानी मिथ्यादृष्टि अथवा अपात्र मिथ्यात्वी पात्र कहे जाते हैं। मिथ्यादृष्टि को हजार लाख देने का जो फल होता है वह एक देशविरति श्रावक के भोजन कराने से होता है। हजार देश विरति को देने से जो लाभ होता है वह एक महाव्रती साधु को देने से फल होता है। हजार साधुओं को दान का फल विचार कर गौतम ने छट के पारणे बड़े भाव से साधुओं को क्षीर खांड का भोजन दिया। आचार्य की नवांग पूजन करे, औषध वस्त्रादि देवे, गणधर की मूर्ति बनवावे तथा जिनेश्वर के आगे २४ नारियल रखे, १४५२ सुपारी आदि फल रखे इस तरह से पन्द्रहवें पद का आराधन करे।

इस पद की आराधना से हरिवाहन राजा तीर्थङ्कर हुए। जिनकी कथा इस प्रकार है।

पंद्रहवें सुपात्रदान पद पर हरिवाहन राजा की कथा

भरतक्षेत्र के कलिंग देश में समृद्धिशाली कंचनपुर नगर था। वहां शौर्यादि गुणालंकृत महान प्रतापी हरिवाहन राजा था। उसके महान बुद्धिशाली सब प्रधानों में मुख्य विरंची नाम का प्रधान था। उसने अपार द्रव्य व्ययकर एक मनोहर देव भुवन समान श्री ऋषभदेव स्वामी का मन्दिर बनवाया। एक दिन मंत्री महाराज हरिवाहन को मन्दिर में भगवान के दर्शन कराने के लिए ले आया। उस समय उस मन्दिर के पास धनेश्वर सेठ के घर नाना प्रकार के बाजे बज रहे थे और स्त्रियां मङ्गल गीत गा रही थी। यह देख राजा ने मंत्री से पूछा कि आज यहां क्या उत्सव हो रहा है? यह सुन मंत्री ने कहा महाराज आज धनेश्वर सेठ के यहां पुत्र जन्म का उत्सव है। इसी कारण यह सब धाम धूम है। पीछे मंत्री सहित जिन मन्दिर में जिनेश्वर के दर्शन कर अपने महल में लौट गया। दूसरे दिन राजा पुनः उसी चैत्य में दर्शन करने के लिए मन्त्री सहित आया। उस समय धनेश्वर सेठ के घर रोने की आवाज सुनी और सब लोगों को शोकातुर देख राजा ने मन्त्री से पूछा कि कल तो यहां उत्सव हो रहा था और आज सब क्यों रो रहे है?

मन्त्री ने कहा महाराज! जिसके लिये कल उत्सव हो रहा था उसी के लिये आज ये सब रो रहे है अर्थात् कल

जिस पुत्र के जन्म से उत्सव हो रहा था उस पुत्र की आज मृत्यु हो गई है इसीलिए सब रुदन कर रहे हैं।

मन्त्री द्वारा हकीकत सुन राजा को वैराग्य हुआ और सोचने लगा कि प्राणियों के सांसारिक सुख केवल दुःख से पूर्ण और दुःख के हेतु रूप है। विविध प्रकार के भोग पानी के बुदबुदे के समान क्षण में नष्ट होनेवाले हैं। यौवन सरिता के वेग की तरह जल्दी से जानेवाला है। लक्ष्मी विद्युत की तरह चपल है। स्वरूपवान देह रोग से पूर्ण तथा नाशवान है। फिर भी प्राणी मृगतृष्णा के समान सांसारिक सुख को सुख मान उसी में लुब्ध रहता है। यह सब महामोह का ही प्रभाव है।

इस प्रकार राजा संवेगपूर्ण हृदय से विचार करता है, इतने में खबर आई कि नगर बाहर उद्यान में धनेश्वरसूरि पधारे हैं। पीछे राजा जिनेश्वर के भक्तिपूर्वक दर्शन कर नगर बाहर उद्यान में जहां सूरि महाराज विराजमान थे वहां प्रधान सहित आकर विनय पूर्वक वन्दन कर सूरि महाराज के सम्मुख बैठ गया। गुरु महाराज ने संसार रूप ताप से संतप्त हुए भव्य जीवों को मेघ की वृष्टि समान देशना देना आरम्भ की।

हे भव्यजनो! दुःख और भय से पूर्ण इस संसार में सुख तो लेश मात्र भी नहीं है क्योंकि द्रव्य में अग्नि और चोर का भय, भोग में रोग का भय, जय में शत्रु का भय, मान में लघुता का भय, यौवन में बुढ़ापे का भय और बुढ़ापे में मृत्यु का भय है। इस प्रकार संसार में कोई भी समय

बिना भय के नहीं है। जहां भय है वहां सुख कैसे हो सकता है? इसलिए हे भव्य जना! तुम अनन्त सुख को देनेवाले वैराग्य की शरण लो।'

इस तरह गुरु मुख से देशना श्रवण कर एवम् अवसर देख राजा ने पूछा कि हे प्रभु! आप कृपा कर बताइये कि धनेश्वर सेठ के घर कल उत्सव और आज विषाद किसलिए हुआ।

गुरु ने कहा राजा यह सब पूर्व कर्म का फल है। इस सेठ ने पूर्व भव में महा मोह के वश हो धर्म बुद्धि से अनेक जीवों को दु:ख पहुँचा कर खूब धन खर्च किया था। मिथ्या-दर्शन से शुद्ध देव गुरु के धर्म से पराङ्मुख हो हरिहरादि कामी और सरागी, गुणहीन देवों के प्रति देवों की बुद्धि, ब्रह्मचर्य रहित परिग्रह धारण कर अनेक प्रकार के आरम्भ समारम्भ करनेवाले कुगुरु के प्रति गुरु की बुद्धि तथा दयारहित और हिंसा से पूर्ण कुधर्म के प्रति धर्मबुद्धि रखी जो महा मोह के प्रभाव से मिथ्यात्व है। किसी व्याधि से पीड़ित कोई प्राणी उसी जन्म में दु:खी होता है परन्तु मिथ्यात्व रूपी महा व्याधि से पीड़ित प्राणी तो अनेक जन्म पर्यन्त दु:ख प्राप्त करता है। यह समझ मिथ्यात्व का त्याग कर शुद्ध देव, गुरु और धर्म के प्रति रुचि रखना यही परम श्रेय का कारण है।

इस प्रकार गुरु की देशना श्रवण कर राजा को संवेग हुआ और राजमहल में आकर पुत्र को राज्य दे उत्साह

पूर्वक संयम अङ्गीकार किया। समिति गुप्तियुक्त चारित्र का पालन करते हुए द्वादशांगी का अध्ययन किया।

एक दिन गुरु से देशना में बीस स्थानक के बारे में व्याख्यान में सुना कि जो महाभाग्य अन्नपानादि से भक्ति-पूर्वक साधु संविभाग का पालन करता है वह श्री जिनेश्वर की सम्पदा प्राप्त करता है और अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है।

यह अधिकार सुन राजर्षि मुनि हरिवाहन ने अभिग्रह लिया कि आज से निरन्तर उत्तम मुनियों को अन्नपानादि देकर उसमें से जो शेष रहेगा वही मैं काम में लेऊंगा। ऐसा अभिग्रह ले निरन्तर मुनियों की आहार पानी औषधादि से भक्ति करने लगा। एक समय इन्द्र महाराज ने देव सभा में हरिवाहन मुनि की साधु सविभाग पर अनन्य भक्ति देख प्रशंसा की। इस पर शङ्कित हो सुवेल देव मुनि की परीक्षा करने के लिये कपट साधु का रूप बनाकर श्रीपुरपत्तन में जहां हरिवाहन मुनि थे वहां तपस्या से क्षीण देहवाला बन पारणा करने के लिए आया। उस समय अपने काम में आने वाला जो आहार था वह उसको दे दिया। पीछे पुनः अपने लिए आहार ला गुरु के पास आलोची सज्जाय कर गोचरी करने बैठा। इतने में उस मायावी देव ने हरिवाहन मुनि के देह में अत्यन्त दुःसह वेदना उत्पन्न कर दी। यह वेदना देख गुरु आदि साधु अत्यन्त खेद करने लगे। पीछे वैद्य के बताये अनुसार किसी गृहस्थ के घर से जल्दी औषधि ला मुनिराज को लेने के लिए कहा। परन्तु मुनि ने मना कर दिया।

३ श्री चन्द्रबाहु जिनेश्वराय नमः
४ श्री भुजङ्ग स्वामि जिनेश्वराय नमः
५ श्री ईश्वर जिनेश्वराय नमः
६ श्री नेमिप्रभु जिनेश्वराय नमः
१७ श्री वीरसेन जिनेश्वराय नमः
१८ श्री देवयशो जिनेश्वराय नमः
१६ श्री चन्द्रयशो जिनेश्वराय नमः
२० श्री अजितवीर्य जिनेश्वराय नमः

उक्त खमासमण देकर २० लोगस्स का कायोत्सर्ग करे।

स्तुति

श्री तीर्थंकर, केवली, अवधी-ज्ञानी, मनःपर्यव ज्ञानी चतुर्दशपूर्व, दशपूर्व, उत्कृष्ट लब्धीवाले चारित्री को जिन कहते हैं। उनके तथा उनके परिवार आचार्य, उपाध्याय, साधु, बाल, वृद्ध, ग्लान, तपस्वी, चैत्य, श्रमणसंघ सब जिनाज्ञा के आराधक हैं, बड़े गुणी हैं, उनकी वैयावृत्ति करे। जिन पद में इन्होंकी वैयावृत्ति करना हमारे मनुष्य भव का लाभ कहा है। जो जिनपद की आराधना करे सो जिन होवे। वे धन्य हैं, कृत्य पुण्य है जिन्होंने पूर्वोक्त दश पद की वैयावृत्ति की वे आराधक हैं, अन्त ससारी है, श्री जिनजी के सेवन वैयावृत्ति का अजब तमाशा है। जैसे अन्य हरिहरादि देव अतिशय भक्ति से प्रसन्न होते हैं और आसातना बेअदबी से अप्रसन्न होते हैं वै... ... रीझते खीजते नहीं। जैसे

अन्य देव अपराधी को जलावला कर भस्म कर देते हैं वैसे जिनदेव कोप कभी नहीं करते। उनकी सेवा करनेवाले इच्छित फल को पाते हैं, जिन के समान होते हैं और आशातना करनेवाले तुरन्त दुःख के भागी होते हैं। ऐसा निःकलङ्क, निर्विकार, निष्काम, निरंजन सर्वगुण सम्पूर्ण जिनदेव अनन्त भव भ्रमण करके बड़े भाग्य से मिले और पहचाने गये, अब कुछ भी न्यून नहीं रहा। जो सेवक से दिल से प्रसन्न हो ऐसे स्वामि की सेवा क्यों कर छोड़ी जाय। ऐसा साधन पाकर साधन न करे वही बड़ा मूर्ख है, बड़ा भाग्यहीन है। इसलिये हमारी गति, मति, स्थिति, आधार, प्राण, शरण, साध्य, साधन सब श्री जिनेन्द्र का चरणारविन्द है, जिनको प्रतिदिन हमारी वन्दना हो। इस प्रकार स्तुति करके पारणा के दिन अष्टभेदी, सत्तरभेदी अथवा १०८ भेदी पूजा करे, देरासर बनावे, प्रतिमा की उवारणा करे, प्रातिहार्य शोभा करे, आचार्य, उपाध्याय, साधु को अन्न, वस्त्र, औषध, प्रमुख की सहाय करे, बाल, वृद्ध, तपस्वी को औषध दे, तैल मर्दन करे, विलेपन अङ्ग सवहन करे, बिस्तरा बिछावे, घड़ी २ खबर रखे व श्रीसंघ में दीन दुःखी की मदद करे।

इस पद की आराधना से जीमूतकेतु तीर्थंकर हुए जिनकी कथा इस प्रकार है।

सौलहवें वैयावच्च पद की आराधना पर जीमूतकेतु राजा की कथा

जम्बूद्वीप के दक्षिण भरत में अत्यंत मनोहर पुष्पपुर नगर था। वहां महान् प्रतापी जयकेतु राजा राज्य करता था उसके शीलगुण से विभूषित रति समान स्वरूपवान जयमाल रानी से जीमूतकेतु पुत्र था। कुमार यौवनावस्था में पहुँ सर्व कलाओं में कुशलता प्राप्त कर अपने सद्गुणों से स लोगों का प्यारा बन गया। इसके सिवा बुद्धि और शौर्यादि गुणों से उसकी कीर्ति सर्वत्र फैल गई। कुमार के रूप गुणादि की कीर्ति सुनकर रत्नस्थलपुर के राजा सुरसेन की पुत्री जे विद्या कला में सरस्वती के समान थी कुमार से प्रेम कर लगी और उसी के साथ ब्याह करने का निश्चय किया सुरसेन राजा ने पुत्री के अभिप्राय को जानकर स्वयंवर मंड तैयार किया। उसमें सब देशों के राजाओं और राजकुमा को आमंत्रित किए। जीमूतकेतु को भी आमंत्रित किया कुमार पिता की आज्ञा ले थोड़ी सेना सहित रत्नस्थलपुर लिए रवाना हुवा। मार्ग में सिद्धपुर नगर के पास अचान कुमार को मूर्छा आ गई। यह देख सब अत्यत दुखी हो गये अनेक प्रकार के मंत्र और औषधियों के उपचार सब कुपा को दिए गये दान के माफिक निष्फल हुए। इतने में व अनेक गुणों के समुद्र और श्रुत के जानकार श्रीअकलंकदे आचार्य पधारे। उनके प्रभाव से कुमार को मूर्छा दूर ह

और तत्काल उनकी वंदना करने के लिए उठा। विधि सहित विनय पूर्वक वंदना कर कुमार गुरु के सामने बैठा। इसलिए उसे प्रतिबोध देने के लिए करूणासिंधु गुरु महाराज ने संसाररूप व्याधि का नाश करने में अमृत समान देशना देना प्रारम्भ की।

यह जीव कषाय के वश आर्त और रौद्र ध्यान कर जिस प्रकार अरण्य में पशु भ्रमण करता है वैसे संसार में अनेक योनियों में परिभ्रमण करता है। ऐसी कोई योनी, कोई कुल, कोई जाति, कोई स्थान नहीं जहां इस जीव ने अनन्त वार जन्म मरण नहीं किया हो। जो मनुष्य पापी, निर्दयी और कुरुप होता है वह नरक से आया है ऐसा समझना चाहिए। जो कपटी और निरन्तर क्षुधा से आतुर चित्तवाला होता है उसे तिर्यंच गति से आया हुवा समझना चाहिए। जो सुबुद्धि वाला, ज्ञान और विवेकी हो उसे मनुष्य गति से आया हुवा जानना चाहिए। सौभाग्यवान, प्राज्ञ और कवि हो उसे स्वर्ग से आया हुवा समझना चाहिए। इसी प्रकार जो प्राणी तीव्र कषायी, अति आरंभ परिग्रह और विषय में रत तथा मांसाहार में लुब्ध हो उसे नरकगामी जानना। मायावी, कटुभाषी, और अविरति हो उसे तिर्यच गति में जानेवाला समझना। दयालु, सत्यभाषी, दानी और सदाचारी हो उसे मनुष्य गति प्राप्त होती है। सुपात्र को दान देनेवाला, मिष्टभाषी, त्रिकाल जिनपूजा करनेवाला और सम्यक क्रिया करनेवाला सुर गति को प्राप्त करता है।

यह सुन कुमार बोला कि हे प्रभु कृपा कर यह कहिये कि मुझे यहां अचानक मूर्छा किस कर्म के उदय से आई।

गुरु ने कहा कुमार यह मैं बताता हूं सो तू सुन। पहले घातकी खंड में परिपतन नगर में घमंडी और क्रोधी दुर्वासा यति था। वह यतिचर्या में निरन्तर प्रमादी और शातादि गारव में लुब्ध था। एक बार गुरु के साथ साकेतपुर जाते हुए मार्ग में आसनपुर ग्राम के नजदीक गुरु ने दूसरे बाल ग्लानादि मुनियों को तृषातुर देख दुर्विनीत दुर्वासा मुनि को कहा कि तुम इन तृषातुर यतियों के लिए इस पास के गांव से प्रासुक जल ले आओ। यह सुन क्रोध से विवेक शून्य हो वह गुरु को जो मन में आया बोलने लगा। दूसरे स्थविरों के मृदु वचनों से समझाने पर शान्त होने के बजाय वह उलटा सारे गच्छ से द्वेष करने लगा। पीछे वह गच्छ छोड़ वहां से अकेला ही आगे चला गया। आगे अरण्य में रौद्र ध्यान के परिणाम से मर कर सातवीं नरक में तेंतीस सागरोपम आयुष्यवाला नारकी हुवा। बिना कारण मुनि की निंदा और द्वेष करने से बांधे हुए तीव्र कर्मों के विपाक से उसे वहां अत्यंत वेदना सहनी पड़ी। आयु पूर्ण होने पर वहां से निकल अनेक भव भ्रमण कर अत्यंत कष्ट सहन करते २ बहुत से कर्मों को क्षय किया। पीछे कौटुम्बिक ग्राम में मासोपवासी मुनि हुवा। कुछ समय तपस्या कर, सुख प्राप्त करने की जिज्ञासा से नियाणा कर वहां से मर कर तू राजकुमार हुवा है। पूर्व में की हुई तपस्या के पुण्य से यह ऋद्धि प्राप्त हुई है और जो

मुनि निंदा का कर्म बांधा था वह भोगते हुए जो अवशेष रहा वह आज तेरे को उदय आया जिससे तुझे मूर्छा आई। मुनि वन्दना से उस कर्म का अब नाश हो गया है।

इस प्रकार गुरु मुख से अपना पूर्व भव सुन कुमार को जातिस्मरण ज्ञान हुआ। इससे संवेग प्राप्त कर गुरु से संसार समुद्र को पार करने में प्रवहण समान निर्मल चारित्र ग्रहण किया। अपने पति ने चारित्र अंगीकार किया ऐसा सुनकर राजकुमारी ने भी चारित्र ले लिया।

राजर्षि मुनि ने विनय पूर्वक ग्यारह अंग का अध्ययन किया। अभ्यास करते हुए एक दिन गुरु से बीस स्थानक पद की महिमा सुनी कि जो कोई भव्यात्मा जिनेश्वरादिक बीस स्थानक की सम्यकत्व पूर्वक विधि सहित एकाग्रचित्त से आराधना करता है वह पुण्यशाली, जगदाधार, तीर्थंकर पद को प्राप्त करता है। उसमें भी सोलहवें वैयावच्च पद की आराधना प्रधान है। उसकी आराधना गुरु, संघ, ग्लान, तपस्वी आदि की अन्न, पानी, औषध भैषजादि से वैयावच्च करने से होती है और उससे जिन नाम कर्म का बंध होता है।

यह गुरु मुख से श्रवण कर जीमूतकेतु मुनि ने अभिग्रह लिया कि आज से मैं निरन्तर शुद्ध भाव से गुरु, ग्लान आदि की वैयावच्च स्थिर चित्त से करूंगा।

एक बार देव सभा में इन्द्र महाराज ने उन राजर्षि मुनि की प्रशंसा की। यह बात सोमनाम लोकपाल देव को नहीं रुचि और मुनि की परीक्षा करने के लिए दाह ज्वर से पीड़ित

सप्तदश संयम पद आराधन विधि

"ॐ नमो संयमस्स"

इस पद की २० माला गिने ।

इस पद के १७ खमासमण देवे । हरेक खमासमण से पूर्व यह दोहा कहे ।

दोहा

शुद्धातम गुण मां रमें, तजि इन्द्रिय आशंस ।
थिर समाधि संतोषमां, जय जय संजम वंश ।।

१ सर्वतः प्राणातिपात विरताय संयम धराय नमः
२ सर्वतः मृषावाद विरताय संयम धराय नमः
३ सर्वतः अदत्तादान विरताय संयम धराय नमः
४ सर्वतः मैथुन विरताय संयमधराय नमः
५ सर्वतः परिग्रह विरताय संयमधराय नमः
६ सर्वतः रात्रिभोजन विरताय संयमधराय नमः
७ ईर्या समिति युक्ताय संयमधराय नमः
८ भाषा समिति युक्ताय संयमधराय नमः
९ एषणा समिति युक्ताय संयमधराय नमः
१० आदानभण्डमक्त निक्षेपणा समिति युक्ताय संयमधराय नमः
११ पारिष्ठापनिका समिति युक्ताय संयमधराय नमः
१२ मनोगुप्ति युक्ताय संयम धराय नमः

३ वचनगुप्ति युक्ताय संयमधराय नमः
४ कायगुप्ति युक्ताय संयमधराय नमः
१५ मनोदण्ड रहिताय संयमधराय नमः
१६ वचनदण्ड रहिताय संयमधराय नमः
१७ कायदण्ड रहिताय संयमधराय नमः

उक्त खमासमण देकर १७ लोगस्स का कायोत्सर्ग करे।

स्तुति

चारित्रधारि साधु, पांच समिति, तीन गुप्ति से युक्त निजस्वरूप में रमता, इन्द्रियगण को दमन करता, सकल परभाव वमन करता, ध्यान ज्ञान से कर्मेन्धन को जलाता, सर्व उपसर्ग परीषहों को क्षमा से सहन करता, नवीन २ अभिग्रह रूप तप का अनुष्ठान करके चारित्र धर्म को जमाता हुआ सदा गुरुचरण में नमता, कदापि समता को नहीं छोड़ता, यथावसर शुद्ध आहार के लिये भ्रमण करता, नये २ शास्त्र को पढ़ता, प्रतिक्षण शुद्धोपयोग रखता, प्रतिक्षण तीर्थ श्रद्धा संवेग वैराग्य से मिथ्यात्व मोह को हटाता, शत्रु मित्र में समचित, दिन रात सभा में एकाकी सोयें जागें, अभिन्नरूप निस्पृहता, पृथिवी के समान सर्वसह, आकाश के समान निरावलम्बन, मेरु के समान अकम्प, चन्द्रइव सौम्य, असि के समान तप से गुप्तेन्द्रिय, बैल इव व्रत वहन समर्थ, सिंह इव अङ्गीकृत निर्वाहक, शंख इव निरञ्ज, कमल पत्र इव निर्लेप इत्यादि गुणगण से अलंकृत गात्र परमपात्र चारित्रधारी को

मालती राणी हर्ष से खडी हुई। प्रफुल्लित हो उसके सामने गई और आदर पूर्वक बोली--कुमार आओ, पधारो, बहु दिनो मे आपके दर्शन हुए। क्या आप विदेश गये थे ?

कुमार ने कहा---नहीं, यही था। बिना कारण बाहर नहीं निकलता। परन्तु माताजी आपने आज मुझे क्यों बुलाया ?

कुमार ! आप मुझे माताजी कह कर कैसे बुलाते हो ? क्या मैं तुम्हारी माता होती हूँ। तुम्हारी माता तो पद्ममाला है। ऐसा कह कुमार पर कटाक्ष किया। यह देख कुमार समझ गया कि राणी विकार के वशोभूत हो अपनी स्थिति को भूल गई है। यह समझ वह बोला—पद्ममाला तो मेरी जन्म देने वाली माता है और आप अपरमाता हो। सिर्फ इतना ही फर्क है। परन्तु इससे तुम माता नहीं हो ऐसा नहीं हो सकता।

राणी ने कहा नही, नही, मैं और तुम तो समान उम्र वाले हैं इसलिए तुम्हारा और मेरा यह सम्बन्ध शोभा नहीं देता। अपना सबध तो.........इतने में कुमार ने राणी को आगे बोलने से रोक कहने लगा—माताजी ! दूसरी उलटी सीधी बातें करना छोड़ यह बताओ कि मुझे यहां क्यों बुलाया है सो कहो।

राणी स्मित वदन से कटाक्ष करती हुई बोली चतुर कुमार ! क्या तुम अपनी इतनी बातचीत से मेरे बुलाने का मतलब नहीं समझे ?

कुमार दुखी होकर बोला—नहीं मैं तो कुछ भी नहीं समझा। स्पष्ट रूप से समझाओ।

राणी तीव्र कामाग्नि से संतप्त हो कुमार का हाथ पकड़ बोली—रसीले कुमार! जो नहीं समझे हो तो अब मैं स्पष्ट कहती हूँ कि मेरा और आपका सम्बन्ध माता व पुत्र का नहीं, परन्तु प्रेमी व प्रेमिका का रखना चाहती हूँ। आपके पिता वृद्ध हो गये हैं और मुझे जरा भी प्रिय नहीं है। इसलिए मेरी उछलती नदी के पूर समान यौवन को भोगने वाले बनो। आपकी मोहक मूर्ति मेरे हृदय में बहुत दिनों से रम रही है। आज आपसे मिलने पर मैं भाग्यशाली हुई हूँ। हे दयालु कुमार! मेरी इच्छा को भंग नहीं कर मुझे स्वीकार कर मेरे दुःख को शांत करो। मैं आपकी दासी हूँ।

राणी के वचन सुन कुमार कान पर हाथ रख बोला—माताजी! माताजी! आप काम रूपी अग्नि से पीड़ित हो हिताहित एवम् धर्माधर्म से विवेक शून्य चित्त वाली हो इन्द्रिय-जन्य क्षणिक सुख की लालसा के लिए इस भव और पर भव में महान् दुःख हेतु रूप विषय रूपी विष पीकर क्यों दुःख मोल लेती हो? पर स्त्री लंपट पुरुष और पर पुरुष लंपट स्त्री को स्वप्न में भी लेश मात्र सुख नहीं मिलता। गुरु पत्नि, पिता पत्नि, बंधु पत्नि और पुत्र पत्नि के साथ जो अधम पुरुष संगम करता है वह नीच भयंकर रौरव नर्क में पड़ अनन्त ...भोगने वाला होता है। विष खाकर मर जाना अच्छा, ...वेश करना भी उत्तम और पर्वत से कूद कर प्राण

कुमार ने कहा–पिताजी ! मेरा दोष क्या है यह आप कहो। मैंने कभी आपकी आज्ञा का उलंघन कर कोई अकार्य नहीं किया। राजा ने कहा अरे नीच ! तू मुख से मीठा बोलने वाला परन्तु हृदय में हलाहल जहर भरा हुआ पिशाच है। तू आगे बोलना बन्द कर, चांडाल भी जो काम नहीं करता वह कार्य करके सत्यवादी बनकर पाप छिपाना चाहता है। कुमार ने कहा–पिताजी! आप क्या कहते हैं वह तो मेरी समझ में कुछ आता नहीं। चाडाल से भी अधर्म कार्य करने में मेरी प्रवृत्ति हो ऐसा स्वप्न में भी होना कठिन है। इतना होने पर भी आप स्पष्ट कहो कि मेरे से कौनसा अकार्य हुआ है। राजा ने कहा--अरे पलीत ! क्या तू स्पष्ट कहलवाना चाहता है। चांडाल ! तू तेरी सौतेली माता के साथ अगम्य गमन करते हुए भस्मीभूत क्या नहीं हो गया ? राजा के ये शब्द सुनकर कुमार कान पर हाथ दे चिल्ला कर बोला– अरे प्रभु ! यह मैं क्या सुनता हूं। इतने में राजा कहता है कि तू क्या सुनता है, तू तेरे किये काले कार्य को सुनता है। अरे कुलांगार कुमार ! तू पुत्र होने से अवध्य है इसलिए मृत्यु दण्ड नहीं देता हूं परन्तु जहां तक मेरी आज्ञा चलती है वहां तक की भूमि में तुझे अपना पैर भी नहीं रखना चाहिए। कुमार ने कहा—पिताजी ! आप इस विषय में सत्यासत्य तो मालूम कीजिए कारण मैं बिल्कुल अपराधी नहीं हूं। राजा ने कहा—अब एक शब्द बोले बिना अभी ही नगर से बाहर चला जा नहीं तो मेरी [illegible] से जलकर

प्रसन्न हो जायगा। अब कुमार ने सोचा कि विशेष खुशामद करना व्यर्थ है। ऐसा सोच माता-पिता को प्रणाम कर हाथ में तलवार ले एकदम नगर वाहर निकल गया। पद्ममाला रानी पुत्र के वियोग से दुःखी हो मूर्छित हो गई। पीछे सावधान हो रुदन करती हुई विचारने लगी कि अवश्य मेरे पुत्र को देश निकाला दिलानेवाली मेरी सौत मालती का ही यह काम है। ऐसा सोच शोक पूर्ण हृदय से दिन व्यतीत करने लगी।

कुमार वहाँ से निकल जंगल की तरफ चला। वहाँ एक पल्लिपति के साथ युद्ध हुवा। इसमें पल्लिपति को जीत कुमार आगे वढ़ा। अन्त में वह नंदीपुर के उद्यान के पास आया। वहाँ सुवर्णमय दंड कलश और ध्वजा से सुशोभित श्री ऋषभ-देव भगवान का मन्दिर देखा। इसलिए शुद्ध जल से स्नान कर भावपूर्वक उल्लसित हृदय से भगवान की सेवा की। पीछे आनन्दपूर्वक हृदय से भगवान को प्रतिमा को देखते हुए स्तुति करने लगा। इतने में वहाँ कोई सुन्दर वस्त्राभूषण से विभूषित देव समान कांति वाला पुरुष आया। उसे देख कुमार स्तुति पूर्णकर वाहर आकर उस पुरुष को प्रणाम कर मधुर वचन से बोला—अहो! भाग्यशाली! आप कौन हैं? और यहाँ अचानक अकेले आपका आगमन कैसे हुवा है? यदि कोई आपत्ति नहीं हो तो अपना वृत्तान्त कहो।

कुमार के विनययुक्त मधुर वचनों से आकर्षित हो आया हुआ दिव्य पुरुष स्नेहपूर्वक बोला—कुमार

उपरोक्त हाल सुन पुरन्दर कुमार बोला कि हे मित्र तू राजा से जाकर कहना कि मेरा मित्र राजकुमारी को लाकर देगा।

कुमार के कहने से मन्त्रीपुत्र ने राजा के पास जाकर यह बात कही, इसलिए राजा ने पुरन्दर कुमार को आदर से बुलाकर कहा—हे वीर कुमार ! जो आप मेरी प्रिय पुत्री को उस पापी विद्याधर के पास से छुड़ाकर लाओगे तो उस कन्या का विवाह आपके साथ कर दूंगा।

कुमार ने कहा—महाराज सात दिन में राजकन्या को ढूंढकर आपके पास ले आऊंगा। यह मैं प्रतिज्ञा करता हूं। यह प्रतिज्ञा कर राजा की आज्ञा ले कुमार अपने स्थान पर आया। वहां आकर विश्व स्वामी की विद्या का ध्यान कर एक दिव्य विमान बनाकर उसमें बैठ मन में सोचने लगा कि जहा हरण की हुई राजकन्या हो वहां पहुँच जाऊं। ऐसा विचार करते ही वह विमान आवाज करता हुआ आकाशमार्ग में चला और क्षण भर में वैताढ्य पर्वत पर परनारी लंपट मणिचूड़ विद्याधर की गंध समृद्धि नगरी में जहां राजकुमारी को छिपा रखा था वहां आकर रुक गया। इतने में मणिचूड़ विद्याधर भी वहां आ पहुँचा। वह कुमार को देख विश्व स्वामी की विद्या के प्रभाव से घबरा गया। इसलिए कुमार से विना कुछ कहे सुने राजकुमारी को उसके सुपुर्द कर उसका मित्र बन गया। पीछे वहां से राजकन्या को लेकर [illegible]पुर नगर में आकर राजा राणी को

राजा ने भी अपने वचन के अनुसार बड़े ठाठ बाट से पुरन्दरकुमार के साथ बन्धुमति का पाणीग्रहण संस्कार किया। कन्यादान में पुष्कल धन दिया और एक सात खण्ड वाला महल रहने को दिया। विविध प्रकार के भोग भोगता हुआ कुमार सुख पूर्वक वहा रहने लगा।

एक दिन उस नगर के उद्यान में तीन ज्ञान को धारण करने वाले अनेक गुणो के समुद्र श्रीमलयप्रभ आचार्य अनेक मुनियों के साथ पधारे। उस समय पुरन्दरकुमार सहित राजा सूरि महाराज को वन्दन करने गया। विनयपूर्वक प्रदक्षिणा दे सब अपने २ उचित स्थान पर बैठ गये तब गुरु महाराज ने देशना प्रारम्भ की।

'अहो! भव्यजनो! सैकड़ों भवो के बाद प्राप्त हुए इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को प्राप्त कर जो प्राणी किसी भी प्रकार का सुकृत नहीं करता और केवल प्रमाद में अपना जीवन बिताता है, वह अनन्त संसार में भ्रमण करता है। जो प्राणी पापानुबन्धी पुण्य करता है वह किंपाक फल की तरह फल प्राप्त करता है और जो भाग्यशाली पुण्यानुबन्धी पुण्य करता है वह कल्पतरु की तरह फल प्राप्त करता है। सब प्राणियों पर अनुकम्पा, विधि सहित वीतराग देव की पूजा वगैरह करने से प्राणी पुण्यानुबंधी पुण्य उपार्जन करता है और वही प्राणी जिनेश्वर भाषित शुद्ध धर्म प्राप्त कर सकता है। धर्म दो प्रकार का है। एक समकित मूल बारह व्रत रूप गृहस्थ धर्म और दूसरा पंच महाव्रत रूप ... । इस

धर्म का सेवन करने से प्राणी अन्त में अविचल सुख प्राप्त करता है। ऐसा संमझ हे भव्यजनों! तुम धर्म में प्रवत्ति रखो।

गुरु मुख से देशना सुन पुरन्दरकुमार ने सम्यकत्वमूल बारह व्रत अंगीकार किये। पीछे गुरू को वन्दना कर सब अपने २ स्थान पर गये।

एक दिन उसी नगर से समुद्रदत्त सेठ अनेक वस्तुएँ लेकर वाणारसी नगरी में व्यापार करने गया। कुछ दिनों में सेठ ने नगर में विविध प्रकार के करियाणों का व्यापार कर खूब धन उपार्जन किया। एक दिन वह सेठ राजसभा में राजा को भेंट देने गया। वहां प्रसंगवश वातचीत करते हुए राजा विजयसेन के सामने अपने नगर में रहनेवाले पुरन्दरकुमार की प्रशंसा की। यह सुन राजा को अत्यन्त हर्ष हुआ। क्योंकि कुमार के जाने के कुछ दिनों बाद राजा को मालूम हो गया कि यह सब नाटक मालती राणी का था और कुमार निर्दोष है। ऐसा मालूम होने पर विना कारण कुमार को देश निकाला देने से राजा को वहुत दुःख था। सेठ के द्वारा कुमार का वृत्तान्त सुन तुरन्त राजा ने कुमार को बुलाने के लिये पत्र लिखकर आदमी को नन्दीपुर भेजा।

राजा का पत्र लेकर आदमी थोड़े दिनों में नंदीपुर जा पहुंचा और राजा का दिया हुआ पत्र कुमार को दिया। कुमार पिता के पत्र को पढ़कर वहुत प्रसन्न हुआ। पिता ने शीघ्र आने को लिखा इसलिए पुरन्दरकुमार अपने श्वसुर की ... ले पत्नि सहित विद्या के प्रभाव से दिव्य विमान बना

उसमें बैठ मार्ग में आने वाले तीर्थों की भावपूर्वक यात्रा करता हुआ पिता की राजधानी वाणारसी नगरी में आया। राजा ने कुमार का उत्सव सहित नगर प्रवेश कराया। कुमार ने विनयपूर्वक माता पिता को नमस्कार किया। वधुमति ने भी सास-श्वसुर को विनयपूर्वक नमस्कार किया। पुत्र, वधू और पुत्र की ऋद्धि को देख माता-पिता को बहुत आनन्द हुआ। पीछे राजा ने बड़े ठाठ बाठ से कुमार को राज्यासन पर आरूढ कर स्वय ने मलयप्रभाचार्य से चारित्र ग्रहण किया।

पुरन्दर कुमार न्याययुक्त प्रजा का पालन करते हुए विद्या के प्रभाव से अनेक गर्विष्ट राजाओं को आधीन कर, जगह २ मनोहर जिनालय बनाकर, भावपूर्वक वीतराग की सेवा भक्ति करता हुआ सुखपूर्वक दिन व्यतीत करने लगा।

इस प्रकार बहुत समय तक राजसुख भोगने पर शरीर का तेज और बल क्षीण करनेवाले बुढापे को आया जानकर वंधुमति से उत्पन्न राजकुमार जयन्त को राज्यासन पर स्थापित कर पांच सौ राजाओं के साथ उत्साह पूर्वक अपने पिता के पास दीक्षा ली और वधुमति ने भी चारित्र लिया। पुरन्दर मुनि ने विधि पूर्वक ग्यारह अग का अध्ययन कर गुरु से बीस स्थानक की महिमा सुन श्रीसंघ की भक्ति करने का कठिन अभिग्रह लिया। फिर निरन्तर यथोचित श्रीसघ की भक्ति भावपूर्वक करने लगा। एक बार किसी नगर से श्रीसिद्धगिरी की यात्रा करने के लिए सघ निकला। उसके साथ पुरन्दर मुनि वगैरह साधु समुदाय भी था। उस समय में मु-

की परीक्षा करने के लिए इन्द्र महाराज आए। उन्होंने संघ के सब मनुष्यों का द्रव्य व भोजन हर लिया और सामने से चोरों का समूह संघ को लूटने के लिए हथियारबंद मनुष्यों सहित आता हुवा संघ के मनुष्यों ने देखा। इस प्रकार दोनों प्रकार के उपद्रव से दुखी हो संघ के मनुष्य चिंतित हो श्री मलयप्रभ आचार्य को नमस्कार कर कहने लगे– हे प्रभु! आप कृपा कर अचानक कष्ट में पड़े हुए संघ के कष्ट को दूर करो। तब आचार्य महाराज ने कहा कि तुम अनेक लब्धियों से युक्त पुरन्दर मुनि को विनती करो। वह अपनी लब्धि से संघ के उपद्रव को दूर करेंगे। आचार्य महाराज के कहने से सब पुरन्दर मुनि से विनंति करने लगे।

श्रीसंघ की विनंति स्वीकार कर गुरु महाराज की आज्ञा ले राजर्षि मुनि ने अपनी लब्धि के प्रभाव से संघ में सुवर्ण की वृष्टि की। उसमें से सब आदमियों ने जितना चाहिए उतना सोना लिया। लूटने आने वाले चोरों के समूह को रास्ते में ही स्थंभित कर दिया जिससे वे आगे पीछे चलने में असमर्थ हो गये। धन प्राप्त हो जाने से पास के गाँव से भोजन की व्यवस्था कर संघ आगे यात्रा करता तीर्थ के पास पहुँचा। मार्ग में स्थंभित हुए चोरों को प्रतिबोध दे बंधन मुक्त किया। इस प्रकार श्री संघ को पुरन्दर मुनि ने उपद्रव रहित किया। यह जान इन्द्र आचार्य महाराज के पास आ प्रगट हो नमस्कार कर बोला– हे करुणा समुद्र ! संघ को संकट में डालने का काम मेरा ही था और यह मैंने पुरन्दर मुनि की परीक्षा लेने

के लिए किया था इसलिये आप मुझे क्षमा करें। इसके सिव आप यह बतावें कि श्रीसंघ की भक्ति करने से इन मुनि ने कौनसा पुण्य उपार्जन किया? यह सुन आचार्य महाराज बोले हे सुरेश! इस मुनि ने संघ की भक्ति करने से त्रैलोक्यपूज्य जिन नाम कर्म उपार्जन किया है। इस प्रकार श्रीसंघ की भक्ति का फल सुन देवेन्द्र मुनि के गुणों की प्रशंसा कर अपने स्थान को गया। राजर्षिमुनि जीवन पर्यन्त सतरहवें स्थानक की भली प्रकार आराधन कर अन्त में महाशुक्र देवलोक में देवता हुए। वहाँ से चवकर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर होंगे और वसुमति का जीव उनका प्रथम गणधर होगा।

अष्टादश अभिनव ज्ञानपद आराधन विधि

"ॐ नमो अभिनव नाणस्स"

इस पदकी २० माला गिने

इस पद के ५१ खमासमण देवें। प्रत्येक खमासमण में पूर्व यह दोहा कहे।

दोहा

ज्ञान वृक्ष सेवो भविक, चारित्र समकित मूल।
अजर अमर पद फल लहो, जिनवर पदवी फूल ॥

१ श्री आचाराङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
२ श्री सूत्रगडांग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
३ श्री स्थानांग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
४ श्री समवायाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
५ श्री भगवती सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
६ श्री ज्ञाताधर्म सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
७ श्री उपासक दशांग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
८ श्री अन्तगड दशांग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
९ श्री अनुत्तरोववाई अङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
१० श्री प्रश्न व्याकरणाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः

११ श्री विपाकाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
१२ श्री उववाई उपाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
१३ श्री रायपसेणी उपाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
१४ श्री जीवाभिगम उपाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
१५ श्री पन्नवणा उपाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
१६ श्री जम्बूद्वीपपन्नत्ति उपाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
१७ श्री चन्दपन्नत्ति उपाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
१८ श्री सूरपन्नत्ति उपाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
१९ श्री निरयावली उपाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
२० श्री पुप्फियो उपाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
२१ श्री पुप्फचुलिया उपाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
२२ श्री कप्पिया उपाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
२३ श्री वन्हिदसा उपाङ्ग सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
२४ श्री चउसरण पयन्ना सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
२५ श्री संथारापयन्ना सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
२६ श्री भत्तपरिज्ञा सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
२७ श्री चन्दाविजय पयन्ना सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
२८ श्री मरणसमाहि पयन्ना सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
२९ श्री गणिविजय पयन्ना सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
३० श्री तन्दुलवियालि पयन्ना सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
३१ श्री देवेन्द्रस्तव पयन्ना सूत्र श्रुतज्ञा

३२ श्री आउरपच्चक्खाण पयन्ना सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
३३ श्री महापच्चक्खाण पयन्ना सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
३४ श्री दशवैकालिक मूल सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
३५ श्री उत्तराध्ययन मूल सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
३६ श्री आवश्यक मूल सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
३७ श्री पिण्डनिर्युक्ति मूल सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
३८ श्री व्यवहारछेद सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
३९ श्री निशिथछेद सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
४० श्री महानिशीथछेद सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
४१ श्री वृहत्कल्पछेद सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
४२ श्री जीतकल्पछेद सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
४३ श्री पंचकल्पछेद सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
४४ श्री नन्दीसूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
४५ श्री अनुयोगद्वार सूत्र श्रुतज्ञानाय नमः
४६ श्री स्यादस्तिभंगप्ररूपकाय स्याद्वाद श्रुतज्ञानाय नमः
४७ श्री स्यादनास्तिभंगप्ररूपकाय स्याद्वाद श्रुतज्ञानाय नमः
४८ श्री स्यादस्तिनास्तिभंग प्ररूपकाय स्याद्वाद श्रुतज्ञानाय नमः
४९ श्री स्यादस्ति अवक्तव्य भंग प्ररूपकाय स्याद्वाद श्रुतज्ञानाय नमः

५० श्री स्यादनास्ति अवक्तव्य भंग स्याद्वाद
श्रुतज्ञानाय नमः

५१ श्री स्यादस्ति नास्ति भंग प्ररुपकाय स्याद्वाद
श्रुतज्ञानाय नम

उक्त खमासमण देकर ५२ लोगस्स का कायोत्स करना ।

स्तुति

जगत् में ज्ञान महा उपकारी है, ज्ञान ही जगत् में निष्कारण बान्धव हितकारी सुखकारी है, ज्ञान मिथ्यात्व रूप अन्धकार को नाश करने को सूर्य है, ससार समुद्र तरने को जहाज है, ज्ञान मनुष्य भव का रत्न है, कुरूप का रूप ज्ञान है, ज्ञानपरम देव है, ज्ञान अनन्त नेत्र है, ज्ञान देश विदेश सर्वत्र पूज्य है, ज्ञान से सब दुःख छूटते हैं, छठ, अट्ठम, दशम प्रमुख उग्र तपस्याकारी अज्ञानी को जो शुद्धता होती है उससे अनन्त गुणा अधिक ज्ञानी की शुद्धता होती है। करोडों भव में अज्ञानी को तपस्या करके जितनी निर्जरा नहीं होती उतनी ज्ञानी एक क्षण में निर्जरा करता है, पेय अपेय, खाद्य अखाद्य, कर्तव्य अकर्तव्य सेव्य असेव्य, हित अहित, लोक अलोक, स्व पर, गुण अगुण, इहलोक, परलोक, सत्य असत्य, द्रव्य अद्रव्य, कारण कार्य, निश्चय व्यवहार, द्रव्य, भाव, कारण कार्य, निश्चय व्यवहार, द्रव्य गुणपर्याय ध्यान ध्येय ध्याता, ज्ञान ज्ञेय ज्ञाता, दान देवदाता, सम्यक् असम्यक् .. परभाव, ये सब सम्यक् स्याद्वाद शैलीमय

कोई तत्व नहीं पाता। सब क्रिया का मूल श्रद्धा और श्रद्धा का मूल ज्ञान है। प्रथम ज्ञान होवे तो श्रद्धा होती है। इसलिए ज्ञानी का जीना सफल है, अज्ञानी का जीवन भव भ्रमण है। इसमें जो सम्यग् ज्ञान का अभ्यास करे वह धन्य है। इस कारण सम्यग् ज्ञानी को हमारी नित्य वन्दना है। हमारा सर्व सुखदाता ज्ञान है। इस प्रकार स्तुति करके पीछे पारणा में सम्यक् ज्ञानदाता गुरु की वन्दना, अंग पूजा करे, पुस्तक दे, ज्ञान का उपकरण दे, नूतन पुस्तक लिखावे, ओली पर्यन्त नूतन शास्त्र सुने आगम सूत्र का अर्थ सुने, जिन भण्डार की रक्षा करे तथा प्रतिक्षण आत्मज्ञान में मग्न रहे।

इस पद की आराधना से सागरचन्द्र तीर्थङ्कर हुए जिनकी कथा इस प्रकार है।

अठारहवें अपूर्व श्रुत पद आराधन पर सागरचंद्र की कथा

इस भरत क्षेत्र में मलयपुर नामक विशाल नगर था। वहाँ न्याययुक्त प्रजा का पालन करनेवाला अमृतचंद्र राजा राज्य करता था। उसे चंद्रकला समान उज्वल रूप और शील वाली चंद्रकला राणी से उत्पन्न लक्षणोपेत कामदेव समान रूप वाला सागरचंद्र नाम का कुमार था। दिन प्रतिदिन वह कुमार विविध प्रकार की कलाओं का अभ्यास कर यौवन वय में पहुँचा। अपने गुणों से माता पिता तथा दूसरे सब मनुष्यों का वह प्यारा हो गया। वह निरन्तर लोगों का उपकार करने

का ही ध्यान रखता था इसलिए उसकी कीर्ति भी सब दूर फैल गई।

एक दिन एक पडित ने राजकुमार को आर्यागीति सुनाई आर्यागीति सुन कुमार ने पडित को पाँच सौ सोना मोहर दी और वह गीति कठस्थ करली। गीति इस प्रकार थी,—

अप्रार्थितमेव यथा, समेति दुःखं तथा सुखमपोह।
तत्यक्त्वा समोहं, प्रयतध्वं धर्म एव बुधाः ॥१॥

अर्थ—जिस तरह प्रार्थना किए विना दुःख आता है उसी तरह सुख भी जगत में विना मांगे प्राप्त होता है। इसलिए हे बुद्धिमान पुरुषों मोह का त्याग कर धर्म में रुचि रखो।

यह श्लोक कंठस्थ कर निरन्तर उसी का स्मरण करने लगा। एक दिन कुमार अपने मित्र सहित उद्यान में क्रीड़ा करने गया। वहाँ कोई पूर्वजन्म के बैरी देवता ने कुमार का हरण कर अथाह जल से पूर्ण समुद्र में फेंक दिया। परन्तु पूर्व पुण्य के संयोग से काष्ट का पाटिया हाथ में आ जाने से उसके आधार से तैरता २ सात दिन में समुद्र किनारे पहुँचा। वहाँ से निकल आगे जाते हुए भ्रमरद्वीप में पहुँचा। वहाँ उक्त श्लोक को स्मरण करता हुवा भ्रमण करने लगा। इतने में शीतल छाया वाला आम्र फलों से युक्त आम्रवृक्ष देख उसकी छाया में जाकर पके हुए आम के फल तोड़ खाने लगा। सात दिन से भूखे होने के कारण कुमार ने आनन्द से वे फल खाये। खाते २ विचारने लगा कि कहाँ मेरी सुख से पूर्ण राजधानी

और कहाँ यह अपरिचित उजाड़ स्थान? कर्म की गति विचित्र है। कुमार मन में इस प्रकार सोचता है इतने में उसकी दृष्टि एक वृक्ष की शाखा पर पड़ी। वहाँ रस्सी बाँध गले में फाँसी लगाने की तैयारी करती हुई सौंदर्यवान सुन्दरी को दुःखी हृदय से इस प्रकार बोलती हुई सुना ! हे सब वन देवताओं! आकाश में रहने वाले ज्योतिषी देवों! आप सब मेरी विनंति एक चित्त से सुनो। मैं इस जन्म में तो सागरचन्द्र पति को प्राप्त नहीं कर सकी परन्तु पुनर्जन्म में तो मुझे सागरचन्द्र पति से जरूर मिलाना। अपना नाम सुन विस्मित हो कुमार उत्साह से सुन्दरी के पास आकर फंदे को काट बोला। हे सुन्दरी ! अज्ञान मनुष्य की तरह तू आत्मघात कर महान् पाप की भागी किस दुःख से होती है ?

कुमार के वचन सुन वह सुन्दरी अपराधी की तरह लाचार और शर्म से बिना उत्तर दिये नीचा मुंह कर शोक ग्रस्त हो खड़ी रही। कुमार ने पुनः पूछा। सुन्दरी! बोलती क्यों नहीं? क्या अपना वृत्तान्त बताने में कोई आपत्ति है? यदि यह ठीक है तो मै विशेष आग्रह नही करूँगा। क्या तुझे अपने स्थान पर जाना है? चल तुझे निर्विघ्न ले चलूं। कुमार यह कहता है इतने में कोई एक विद्याधर वहाँ आ पहुँचा और बोला। हे पराक्रमी पुरुष! मैं इस कन्या का वृत्तान्त कहता हूँ, सुनो।

इस अमरद्वीप में सुरपुर नगर में भुवनभानु राजा की इन्द्राणी समान लावण्यवती चंद्रानना राणी से उत्पन्न यह हेममाला उसकी वल्लभ पुत्री है। यह अमृतचंद्र राजा के पुत्र

इस प्रकार स्त्री के विरह से व्याकुल हुआ कुमार दुखी पूर्व परिचित श्लोक का स्मरण कर व धैर्य धारण कर जंगली फलों का आहार कर अरण्य में घूमने लगा। इतने में वृक्ष की आड में एक प्रतिमाधर चारण मुनि को देखा। उन्हें देखते ही कुमार विनय सहित प्रणाम कर मुनि के सम्मुख जा बैठा। मुनि ने कायोत्सर्ग कर धर्मलाभ दे देशना प्रारम्भ की। मुनि की देशना से सागरचंद्र ने श्रावक धर्म ग्रहण किया पीछे गुरू की वन्दना कर कुमार आगे चला। इतने में सामने से विविध प्रकार के आयुध सहित जल्दी २ आती हुई सैना देखी। थोड़ी देर में सैना नजदीक आ पहुँची और कुमार को घेर लिया। सेनापति ने लाल २ नेत्र कर कुमार को कहा कि हे पुरुषार्थहीन! हथियार लेकर लड़ने की तैयारी कर, मृत्यु तेरा इन्तजार कर रही है।

सेनापति के वचन सुन कुमार सिंह की तरह गर्जना कर बोला। अरे, अनेक शिआलियों की मदद से अपने को बलिष्ट माननेवाले कुत्ते! तेरे भोंकने से यह सिंह डर जाय ऐसा नहीं है, चल तैयार होजा। इतना कहते ही कुमार पर अनेक आयुधों के प्रहार होने लगे। कुमार भी बिजली के समान चमकती हुई तलवार म्यान से बाहर निकाल सेना में घास की तरह सुभटों के मस्तक धड़ से अलग करने लगा। थोड़ी देर में तो आधी सेना का काम तमाम कर दिया। कुमार के अतुल पराक्रम से सेना भयभीत हो चारों दिशाओं में भागने लगी। सेना को भागते देख सेनापति घोड़े पर चढ़ सेना को

और शब्दों से उकसाकर स्थिर करने का प्रयत्न करने लगा।
परन्तु सेना तो भागती ही रही। कुमार अश्व पर चढ़े हुए
शत्रु के पास जाकर ठोकर से नीचे गिरा छाती पर अपना
पैर रख रक्त से टपकती तलवार उसके मुख पर रख बोला,
अरे नीच! बिना कारण विरोध कर मृत्यु में जानेवाले नर-
पिशाच! बोल अब तेरी रक्षा करनेवाली सेना कहाँ गई? मद्य-
पानी की तरह अत्यन्त वाचालता से चलनेवाली जीभ अब कैसे
रुक गई? अब बता तेरे और मृत्यु में कितना अन्तर है? अरे
नराधम नीच! अब तू तेरे इष्ट देव का स्मरण करले। मैं
अब तुझे तेरे विवेक हीन कार्य का इनाम देता हूँ सो स्वीकार
कर। ऐसा कह उसे मारने के लिये कुमार ने तलवार उठाई।
इतने में अचानक एक नवयौवना सुन्दरी वहाँ आ पहुँची और
बोली—अहो वीर पुरुष! शांत रहो, हार कर पृथ्वी पर पड़े
हुए शत्रु को वीर पुरुष कभी नहीं मारते।

उस सुन्दरी के अचानक ऐसे वचन सुन आश्चर्य में हो
कुमार गम्भीर शब्द से बोला— हे सुन्दरी! इस पिशाच को
मृत्यु से बचानेवाली तुम कौन हो?

तब सुन्दरी ने उत्तर दिया, वीरकुमार, मैं कौन हूँ, सो
सुनो। कुशवर्धनपुर नगर के कमलचंद्र राजा की समरकान्ता
राणी से उत्पन्न भुवनकांता नामकी रूपवती पुत्री थी। उसने
यौवन अवस्था में पहुँचने पर सागरचंद्र कुमार के गुणों की
प्रशंसा सुनी, इसलिए वह कुमार पर आसक्त हो निरन्तर
[illegible] का स्मरण करने लगी। एक दिन शैलेशनगर के सुदर्शन

मृगलोचिनी ललित ललनाओं की प्रार्थना से कुमार ने हर्षपूर्वक उन पाँचों कन्याओं से एक ही साथ गान्धर्व विव किया। पीछे पाँचों प्रमादओं को पहलेवाले रथ में बिठा अप छः स्त्रियों सहित आगे चला। थोड़ी दूर जाने पर वीतरा देव का मनोहर चैत्य देखा। उसे देख प्रभु के दर्शन की तो उत्कंठावाला सागरचंद्र छः स्त्रियों सहित देवाधिदेव की वंदन करने विधि सहित मंदिर में गया। पूर्ण भक्ति से भगवान के दर्शनकर उल्लासपूर्ण हृदय से सबों ने स्तुति की। पीछे कुमार प्रासाद की शोभा देखने के लिये शिखर पर चढ़ा। ऊपर चढ़ इधर उधर देखता था इतने में अचानक वृक्ष की शाखा टूटे उस तरह देरासर के शिखर से कुमार भूमि पर गिर पड़ा। पूर्वपुण्य के प्रभाव से शरीर को चोट नही आई। थोड़ी देर में वहाँ से उठ स्त्रियों को तलाश करने जिन मंदिर में गया तो वहाँ पर कोई नही मिला। बाहर निकल रथ के पास देखा तो वहाँ भी कोई नहीं था। अचानक स्त्रियों के गायब होजाने से कुमार सोचने लगा कि यह अवश्य कोई वैरी देव या विद्याधर मेरी स्त्रियों को हर कर ले गया है। मैंने प्राप्त की हुई निधि को खो दिया। अब क्या करूँ? कौन ले गया होगा? कहाँ तलाश करूँ? इस प्रकार व्याकुल हो पूर्वोक्त श्लोक का स्मरण करने से चित्त स्थिर हुआ। फिर विचारने लगा कि सब उपद्रवों का नाश करनेवाले जिनेश्वर की भावपूर्वक पूजा कर पीछे स्त्रियों को तलाश करने जाना चाहिए। ऐसा सोच पास के सरोवर के निर्मल जल में कर

सुगन्धित पुष्पों से भगवान की पूर्णभाव से भक्तिपूर्वक पूजा स्तुति करने लगा।

उस समय श्रीपुर नगर का राजा धर्मसेन जो अमृतचंद्र राजा का मित्र था वह किसी ज्योतिषी के कहने से अपने परिवार सहित अपनी पुत्री को लेकर यहां आ पहुँचा। सिंह-नाद खेचरपति भी अपनी पांच पुत्रियों सहित वहां आकर कहने लगा कि हे कुमार! मेरी पुत्रियों और तुम्हारी स्त्रियों का किसने हरण किया वह वृत्तान्त सुनाता हूँ सो सुनो। प्रथम आपको समुद्र से निकल पास के द्वीप में अमिततेज विद्याधर व कनकमाला (हेममाला) के भेंट के समय आपको देखा था। उसके पद्म और उत्पल नाम के पुत्रों ने आपको शिखर से नीचे गिरा आपको छः स्त्रियों का हरण करके जा रहा था, उस समय मैं यहां आ रहा था। मार्ग में मेरी उससे भेंट हुई। मेरी पुत्रियों को वह ले जारहा है ऐसा मालूम होने पर मैने उसके साथ युद्ध कर उत्पल को मार मेरी पुत्रियों को छुड़ाया। पद्म आपकी भुवनकान्ता को लेकर वैताढ्य पर्वत पर गया। भुवनकान्ता आपकी रानी है इसका पता मुझे पीछे लगा। यदि पहले ही यह मालूम हो जाता तो उसको भी नहीं लेजाने देता। अब मैं तुमको कुछ विद्याएं देता हूँ इनको सिद्ध कर आप खुद उस दुष्ट को पराजित कर भुवन-[illegible] छुड़ाकर लाओ नहीं तो वह बिचारी आपके वियोग [illegible] आत्मघात करले।

यह वृतान्त सुन कुमार को भुवनकान्ता के लिये बड़ा खेद हुआ और पाँच स्त्रियों के मिल जाने से हर्ष भी हुआ। पीछे हर्ष शोक सहित धर्मसेन राजा की कन्या के साथ विवाह कर सिंहनाद खेचरपति के पास से अनेक विद्याऐं ग्रहण की। विद्या के प्रभाव से दिव्य विमान रच उसमें सिंहनाद सहित स्त्रियों को लेकर वैताढ्य पर्वत पर अमिततेज खेचर के नगर में पहुँच उसे कहलाया कि तुम्हारे पुत्र पद्मकुमार ने मेरी स्त्री का हरण किया है सो उसे समझाकर मेरी स्त्री को मेरे सुपुर्द करो नहीं तो युद्ध होने पर उसका बुरा परिणाम तुमको उठाना पड़ेगा।

अमिततेज को खबर मिलने पर उसने पुत्र को समझाकर उसके पास से भुवनकान्ता को छुड़ा सागरचंद्र के सुपुर्द की। पीछे सागरचंद्र को उत्सवपूर्वक नगर में प्रवेश कराया। सागरचंद्र ने कनकमाला को भी उसके पीहर से वहाँ बुलाया। आठों स्त्रियों सहित वैताढ्य पर्वत पर रह पंच विषय सुख भोगता हुआ हर्षपूर्वक शाश्वती चैत्यों की यात्रा करता हुआ मनुष्य जन्म सफल करने लगा।

कुछ दिन सुखपूर्वक कुमार वहाँ रहा, पीछे अपने नगर जाने की इच्छा होने से अपना विचार सबको बताया। सबकी अनुमति लेकर कुमार विमान में बैठ सब स्त्रियों, अन्य परिवार एवं अपार समृद्धि लेकर अपने नगर के समीप आया और अपने आने की सूचना पिताजी को भेजी। [illegible] को कुमार के आगमन की खबर मिलने पर नगर में [illegible]

स्वयं अपने परिवार सहित कुमार को लेने सामने आया। माता पिता को आते देख कुमार ने विमान से उतर विनय-पूर्वक उनके चरण स्पर्श किए। बहुओं ने भी विनयपूर्वक सास श्वसुर को नमस्कार किया। कुमार की समृद्धि देख माता पिता को बहुत आनन्द हुआ। पीछे बड़े ठाठ-बाट से नगर में प्रवेश कराया। ऐसे आनन्द के समय यह खबर मिली कि नगर बाहर सूर्य उद्यान में सर्वलोक को पवित्र करनेवाले और अनन्तज्ञान को धारण करनेवाले भुवनावबोध मुनि पधारे हैं।

केवली भगवान के आने की सूचना मिलने से राजा कुमार सहित वंदना करने गया। विनय सहित तीन प्रदक्षिणा दे राजा और कुमार उचित स्थान पर बैठ गये। पीछे गुरु महाराज धर्म देशना देने लगे।

लक्ष्मी वेश्मनि भारती च वदने शौर्यं च दोष्णोर्युगे,
त्यागः पाणितले सुधीश्च हृदये सौभाग्यशोभा तनौ।
कीर्तिर्दिक्षु सपक्षता गुणिजने यस्माद् भवेदंगिनां,
सोऽयं वांछित मंगलावलि कृते धर्मः समासेव्यताम् ॥१॥

अर्थ— हे भव्यजनो! जिस धर्म से घर में लक्ष्मी, मुख में सरस्वती, दोनों भुजाओं में शौर्य, हाथों में दान, हृदय में सुन्दर बुद्धि, शरीर में सौभाग्य शोभा, दिशाओं में कीर्ति और [illegible]न पुरुषों में पक्षपात होता है ऐसे इच्छित मंगलमाला [illegible]वाले धर्म का सेवन करो।

और फिर कहा है कि—

पूआ जिणंदं सुरइ वओसु, जुत्तो अ सामाइअपोसहंमो ।
दाणं सुपत्ते नमणं सुतीत्थे, सुसाहुसेवा सिवलोय मग्गो ॥१॥

अर्थ— जिनेश्वर की पूजा, व्रतों में प्रेम, सामायिक पौषध से युक्त, सुपात्र को दान, सुतीर्थ को वंदना और सुसाधु की सेवा यह सब शिवगमन के मार्ग हैं ।

इस प्रकार गुरु मुख से देशना सुन, अवसर देख राजा बोला—हे प्रभु! मेरे कुमार का किसने और किस कारण से हरण किया आप कृपाकर बताइए ।

गुरु ने कहा हे राजन् पूर्व विदेह क्षेत्र में एक नगर में दो भाई स्नेहपूर्वक रहते थे । उनमें बड़े भाई की स्त्री अपने पति से बहुत प्रेम करती थी । चाहे जैसा काम हो फिर भी वह उसे दूर नहीं जाने देती । ऐसा दृढ स्नेह देख छोटे भाई ने एक रोज परीक्षा लेने के लिये अपने बड़े भाई से कहा कि भाई! आज किसी कार्यवश तुमको बाहर गाँव जाए बिना काम नहीं चलेगा क्योंकि वह काम आपके बिना होगा नहीं । छोटे भाई के कहने से बड़ा भाई स्त्री को बड़ी मुश्किल से समझाकर जल्दी वापिस आने के लिए कह बाहर गाँव चला गया । बड़े भाई के जाने के थोड़े दिन बाद छोटा भाई भाभी के पास आकर शोकग्रस्त मुद्रा से बोला, भाभी ! क्या कहूँ कहते मेरी जीभ काम नहीं देती परन्तु कहे बिना काम भी नहीं चलता । मेरे भाई की यहाँ से जाने के बाद अचानक दुर्भाग्यवश तीव्र रोग से मृत्यु हो गई ।

तीक्ष्ण तीर समान देवर के वचन सुन अहोनाथ! ऐसा कह उसने दम तोड़ दिया। भाभी को प्राणहीन देख लघुभ्राता अत्यन्त पश्चाताप करने लगा कि सिर्फ परीक्षा करने के लिए मैंने ऐसी अघटित बात कही और इस बिचारी ने अपने प्राण दे दिए। मैं बड़ा अभागा हूँ। अब बड़े भाई को क्या उत्तर दूंगा।

कुछ दिनों बाद बड़ा भाई वापिस आया। तब छोटे भाई ने सब हाल सुनाकर अपने अपराध की क्षमा माँगी। बड़ा भाई स्त्री की मृत्यु के समाचार सुन अपनी स्त्री के स्नेह का स्मरण कर विलाप करने लगा। तब से भाई के साथ द्वेष रखने लगा। उसके साथ बोलना, खाना, पीना आदि बंद कर निरन्तर शोकाकुल रहने लगा। अन्त में मोह से वैरागी हो तापसी दीक्षा ली और बालतपस्या से कष्ट सहन कर वह असुरकुमार हुआ। छोटे भाई ने भी समकित युक्त शुद्ध संयम अंगीकार किया। गुरु के पास विनय पूर्वक ग्यारह अंग का अध्ययन कर निरतिचार से चारित्र का पालन करने लगा। एक बार तापसी दीक्षा ले असुरकुमार होनेवाले बड़े भाई के जीव ने पूर्व वैर का स्मरण कर उस मुनि की हत्या की। मुनि मरकर दसवें प्राणत देवलोक में देवता हुआ। वहाँ से चवकर वह देव तेरा पुत्र सागरचंद्र हुआ। बड़े भाई का जीव असुरकुमार से चलकर अनेक भवों में भ्रमण कर मनुष्य जन्म प्राप्त कर पुनः तापसी दीक्षा ग्रहण कर व मरकर अग्निकुमार देव हुआ। उसने पूर्व के वैर से कुमार को निद्रा में से उठाकर

समुद्र में फेंका वगैरह कष्ट दिए। परन्तु सागरचंद्र ने पूर्व में शुद्ध चरित्र का पालन किया उस पुण्य के प्रभाव से किसी भी जगह दुखी न हो सुख ही प्राप्त किया।

इस तरह गुरु मुख से देशना सुन कुमार को जाति स्मरण ज्ञान हुआ। इसलिए वह गुरु से पूछने लगा हे करुणा समुद्र! यह जीव ससार मे भ्रमण करते हुए कितनी कुल कोटी व योनि में भ्रमण कर दुख प्राप्त करता है? यह आप कृपाकर बताओ।

कुमार की प्रार्थना से गुरु महाराज बोले— हे कुमार! योनी व कुलकोटी का विचार पृथ्वीकायादिक के भेद से अनेक प्रकार का बतलाया है। फिर भी मैं तुझे संक्षेप में कहता हूँ सो एकाग्र चित्त से सुनना। पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय और वायुकाय इन प्रत्येक को सात २ लाख योनी हैं। साधारण वनस्पतिकाय की चौदह लाख योनी हैं, विगलेंद्रिय की दो २ लाख, नारकी, देव और तिर्यंच पंचेन्द्रिय की चार २ लाख योनी हैं, तथा मनुष्य की चौदह लाख योनी है। इस प्रकार सब मिलाकर चौरासी लाख योनी है। अब इन सबकी कुल कोटी कहता हूँ वह सुनना। बारह लाख कुलकोटी पृथ्वीकाय की, सात लाख कुलकोटी अपकाय की, तीन लाख कुलकोटी तेऊकाय की, सात लाख कुलकोटी वायुकाय की पच्चीस लाख कुलकोटी नारकी की, छब्बीस लाख कुलकोटी देव की, बारह लाख कुलकोटी मनुष्य की, अट्ठाइस लाख वनस्पति काय की, सात लाख बेइन्द्रिय की, आठ लाख तेइन्द्रिय की, नौ लाख चौरेन्द्रिय की, साढ़े बारह

लाख जलचर की, बारह लाख खेचर की, दस लाख चतुष्पद की, दस लाख उरपरी की, नौ लाख भुजपरी की। इस प्रकार कुल एक सौ साढ़े सत्तानवे लाख कुलकोटी हैं। इनमें अनादिकाल से यह जीव मोह के वश से अत्यन्त दुःख पाता है। जितने तीव्र दुःख नारकी के अन्दर हैं उससे भी अनन्तगुणा दुख निगोद में है। ऐसा समझ इस दुःख से छुड़ानेवाले ज्ञान दर्शन, चारित्र और तप इन चार प्रकार के जिनोक्त धर्म का पालन कर सुखी होओ।

यह धर्मोपदेश श्रवण कर सागरचंद्र को संवेग हुआ। इसलिए अपनी आठों राणियों सहित चारित्र लिया। अमृतचन्द्र राजा ने भी सागरचंद्र के पुत्र को गद्दी दे आठ दिन पर्यन्त जिनगृह में उत्सव कर चारित्र अंगीकार किया। सागरचन्द्र मुनि ने विनय सहित गुरु से ग्यारह अंग का अध्ययन किया। एक बार गुरुमुख से बीस स्थानक तप सम्बन्धी अधिकार सुनकर अठारहवें पद अपूर्वश्रुत पढ़ने का अभिग्रह धारण किया। प्रथम पोरसी में विधि सहित स्वाध्याय, दूसरी पोरसी में उसके अर्थ का चिंतन, तीसरी पोरसी में आहार पानी की गवेषणा और चौथी पोरसी में अपूर्व श्रुत का अध्ययन करता। इस प्रकार निरन्तर ज्ञानाचार युक्त निरतिचार से स्थिर चित्त से अभिग्रह का पालन करने लगा।

एक बार चमरचंचा नगरी के स्वामी अमरेन्द्र ने सभा में सागरचंद्र मुनि की स्तुति करते हुए कहा कि वर्तमान समय में भरतक्षेत्र में सागरचंद्र मुनि के समान कोई भी श्रुतोपयोगी

१३ पाहुड पाहुड श्रुतज्ञानाय नमः
१४ पाहुड पाहुड समास श्रुतज्ञानाय नमः
१५ पाहुड श्रुतज्ञानाय नमः
१६ पाहुड समास श्रुतज्ञानाय नमः
१७ वस्तु श्रुतज्ञानाय नमः
१८ वस्तु समास श्रुतज्ञानाय नमः
१९ पूर्व श्रुतज्ञानाय नमः
२० पूर्व समास श्रुतज्ञानाय नमः

उक्त खमासमण देकर २० लोगस्स का कायोत्सर्ग करे।

स्तुति

शास्त्र में श्रुति ज्ञान के भगवान ने कई गुण कहे हैं। श्रुतधारी केवली की उपमा पाता है, उत्तराध्ययन सूत्र में बहुश्रुत को बड़ी २ उपमा देकर वीरस्वामी ने अपने मुख से कहा है कि श्रुतज्ञान सर्वजनोपकारी है। जिसको श्रुताभ्यास नहीं है वह अज्ञानी है। लोक में भी कहा जाता है कि हितकारक मूर्ख से पण्डित शत्रु भी अच्छा है। आगम श्रुतरूप समुद्र अपार है। जैसे समुद्र रत्नादि अनेक चीजों से भरा है, वैसे श्रुत जलधि अनेक आम्नाय से भरा है। उसमें प्रथम आचाराङ्ग में अठारह हजार पद हैं और आचार्य की वार्ता मुख्य है, आगे सुकृताङ्ग प्रमुख १० अङ्ग में द्विगुण २ पद है। पद का प्रमाण गाथा से जान लेना। यथा लक्खा अडसट्ठ गयं सहस्स सत्तेव अट्ठम ॥ उसीउकिटकालपय, भासिय गणहार धारेहि ॥१॥

पेयं इक्किक्क अक्खर संख्या कोडि यण सहस्सायं उवरिपडसय कोडी कोडी, चउतीस्सहं उवरि ॥२॥ अर्थात् ३४३८०७८८० अक्षर एक पद में होते हैं, और इग्यारह ही अंग में सब मिल कर ३६५४२००० पद होते हैं। बारहवाँ अंग दृष्टिवाद है, उसका पार गणधर के सिवाय दूसरा नहीं पा सकता। गणी जो पावे पाठक कहलाता है। बारहवाँ अंग का अधिकार मात्र चौदह पूर्व है। उसमें प्रथम उत्पादपूर्व एक करोड़ पद हैं। उसमें सर्व द्रव्य का उत्पाद व्यय ध्रौव्य का परिज्ञान है। दूसरा अग्राणी पूर्व ९६ लाख पद का है। उसमें सब बीज का मानो टोटल मिलाया है। तीसरा वीर्य प्रमाद पूर्व ७० लाख पद का है, उसमें बल प्रयत्न कार्य और बलवन्त का रूप वर्णन है। चौथा अस्तिनास्ति प्रवाद पूर्व ७ लाख पद हैं, उसमें कुल अस्तिनास्ति स्वभावरूप सप्तभंगो स्याद्वाद है, स्वपरभंग का पात्र है। पाँचवाँ ज्ञानप्रवाद पूर्व १ कोटि प्रमाण पद का है उसमें मत्यादि पाँच ज्ञान का स्वरूप भेद मुख्य है। छठा सत्य प्रवाद का १ कोटि प्रमाण सत्यादि भाषा स्वरूप सर्व भाषा भाषक वाच्य वाचिक स्वरूप है। सातवां आत्मप्रवाद पूर्व १ कोटि पद प्रमाण है, उसमें आत्म द्रव्य का कर्तृत्व, भोक्तृत्व, नित्यत्व, अनित्यत्वादि आत्म धर्म का स्वरूप है। आठवाँ कर्म प्रवाद पूर्व एक कोटि अस्सी लाख पद हैं, उसमें आठों कर्म के बंधादि स्वरूप हैं। नवमां पचक्खान प्रवाद पूर्व ८४ लाख पद प्रमाण हैं, उसमें पचक्खान स्वरूप द्रव्य भाव से निश्चय व्यवहार से है और उपादेय प्रमुख सर्व शैली है। दशमां

किसी समय वे चारों मित्र उद्यान में क्रीड़ा करने गये। वहाँ अनेक जीवों का उपकार करनेवाले सिंहसूर आचार्य को देखा। उन्हें देख चारों मित्र विनयपूर्वक वंदना कर गुरु के सम्मुख बैठ गये। इसलिए गुरु महाराज ने देशना देना आरम्भ किया। देशना देने के बाद अन्त में गुरु ने निम्न श्लोक कहा।

नरस्य पंचकं दास्यं, सौन्दर्यं सति किं पुनः ।
बुद्धिः साहसी की पुण्य प्रभाव सहिता पुनः ।।

अर्थ—मनुष्य को उसका पंचक अर्थात् भाग्य दास बनाता है, उसमें भी जो सौंदर्यमान मनुष्य हो अथवा पुण्य प्रभाव से साहसी व बुद्धिमान हो तो फिर क्या कहना?

यह श्लोक सुन चारों मित्र अपने भाग्य की परीक्षा की परीक्षा करने के लिए बिना कोई वस्तु लिए तथा माता पिता की आज्ञा लिए बिना ही परदेश चले गये। मार्ग में जंगली फल खाते और नाना प्रकार की कथा वार्ता करते हुए दस दिन के बाद एक अटवी को पार कर एक नगर में पहुँचे। वहाँ सेठ पुत्र से तीनों मित्रों ने कहा कि आज गाँव में तू तेरी बुद्धि से भोजन करा। सेठ के पुत्र ने यह बात स्वीकार की और गाँव में गया। गाँव मे जा देव दर्शन कर गाँव में घूमने लगा। इतने में उस दिन कोई पर्व होने से एक वृद्ध वणिक की दुकान पर ग्राहकी विशेष थी जिससे व्यापारी को व्याकुल जान उसे बेचने सँभालने में मदद करने लगा। थोड़ी देर में सब ग्राहकों को निपटा बिदा कर वणिक ने सेठ को

इसाकार पुत्र अपने घर भोजन करने के लिए आग्रह किया।
सेठ पुत्र ने कहा कि हम चार मित्र हैं और सब भ्रमण करने
निकले हैं इसलिए अकेला मैं आपके यहां भोजन करने नहीं
आ सकता। तब वणिक ने कहा कि आपके दूसरे मित्रों को
भी बुला लो और आज तो अवश्य मेरे घर ही भोजन करो।
वणिक के आग्रह से श्रेष्टि पुत्र ने उसका कहना माना और
चारों मित्रों ने उस दिन वहीं ही भोजन किया। दूसरे दिन
उस गाँव से चल दूसरे गाँव मे पहुँचे। वहां आकर सार्थवाह
के पुत्र को मित्रों ने कहा कि आज सबको तू भोजन करा।
मित्रों की बात मान अनंग समान अद्भुत रूपवान सार्थवाह
का पुत्र गाँव में वेश्या के मौहल्ले मे गया। उसे अत्यन्त
स्वरूपवान देख अनंगसेना वेश्या उस पर मोहित होगई।
इसलिए उसने उसे आदरपूर्वक बुला अपने घर रहने की प्रार्थना
की। सार्थवाह के पुत्र ने कहा कि मै अपने दूसरे तीन मित्रों
को छोड़कर तेरे यहाँ अकेला नही रह सकता। वेश्या ने कहा
कि कहा कि अपने दूसरे मित्रों को भी बुला लो, उनका भी
योग्य अतिथि सत्कार करूँगी। वेश्या के आग्रह से अपने मित्रों
को बुला लाया। वेश्या ने सबको आदरपूर्वक बुला विविध
प्रकार का भोजन करा संतुष्ट किया। तीसरे दिन वहाँ से
रवाना हो चारों मित्र सुवर्णपुर नगर में आए। वहाँ सब मित्रों
ने मंत्री पुत्र से कहा कि आज सबको तुम भोजन कराओ।
[illegible] की बात मान मंत्री पुत्र नगर में राजमंदिर की तरफ
[illegible] वहाँ आकर खड़ा रहा इतने में राजसभा में एक

न्यायपूर्वक राज्य करते हुए रत्नचूड़ के सोमेश्वर और२१ और सूरसेन दो पराक्रमी पुत्र हुए। जब वे यौवनावस्था में२। पहुँचे तो राजा ने सोमेश्वर को कंचनपुर का राज्य दिया और सूरसेन को ताम्रलिप्त नगर के राज्य सिंहासन पर युव-, राज पद पर स्थापित किया। इस प्रकार सुखपूर्वक दिन व्यतीत करने लगा।

एक दिन राजसभा में मिथ्यादृष्टि पंडित आया। उसने अपने वेद पुराण स्मृति आदि शास्त्रों की प्रशंसा कर कहा कि ये सब संस्कृत भाषा में होने से मोक्ष को देनेवाले हैं और जिनागम की अवगणना कर कहा कि जिनागम प्राकृत भाषा में होने से प्राणियों को मोक्ष मार्ग बतानेवाले नहीं हैं। इस प्रकार जिनोक्त तत्व की अवगणना सुन राजा कुछ भी बोले बिना मौन बैठा रहा। उसी समय उद्यानपाल ने सूचना दी कि अनन्त ज्ञान को धारण करनेवाले अमरचंद्र मुनि नगर उद्यान में मुनि परिवार सहित पधारे हैं। केवली भगवान के आगमन को सुन रत्नचूड़ राजा हर्षपूर्वक अनेक मनुष्यों के साथ उस पण्डित को साथ ले गुरु की वंदना करने गया। गुरु के पास आकर विनयपूर्वक तीन प्रदक्षिणा दे भावपूर्वक नमस्कार कर गुरु सन्मुख उचित स्थान पर बैठा। इसलिए गुरु ने देशना आरम्भ की।

'हे भव्यजनो! विशाल लक्ष्मी, सुन्दर रूप, विनयवत पुत्रों का परिवार, उदारता, निर्मल बुद्धि उत्तम प्रकार के भोग, सत्यवादिता, निर्मल शील का पालन, दयालुता, [illegible],

म कुल में जन्म और देवगुरु के प्रति शुद्ध भाव से अनन्य त वगैरह संस्कार का ही फल है। ऐसा समझ धर्म में रखो।

देशना श्रवण कर राजा बोला— हे भगवान! जिनेश्वर ने प्राकृत भाषा में आगमों की रचना क्यों की? गुरु ने कहा— राजन! जिनेश्वर की वाणी सब समझ सकें ऐसी और अर्ध मागधीयुक्त होने से प्राकृत भाषा में रची है और दूसरा भी कारण यह है कि :—

बालस्त्रीमंदमूर्खाणाम् नृणाम् चारित्रकांक्षिणाम् ।
अनुग्रहाय तत्वज्ञैः, सिद्धान्तः प्राकृत कृतः ॥१॥

अर्थ— चारित्र की आकांक्षा करनेवाला बालक, स्त्री, मंद बुद्धिवाला और मूर्ख जीवों के अनुग्रह के लिए तत्व के जानने वाले जिनेश्वर ने सिद्धान्त प्राकृत भाषा में बनाये हैं।

इतना कहने के बाद राजा का अभिप्राय जान केवली महाराज पूर्वोक्त मिथ्यादृष्टि पंडित से कहने लगे कि हे पंडित! यह समस्त सचराचर विश्व नित्य है या अनित्य? यदि नित्य है तो किस प्रकार नित्य है? यदि अनित्य है तो अनित्य किस तरह है। गुरु के इतने से प्रश्न से पंडित स्तब्ध होगया। इसलिए वहाँ बैठे हुए सब लोग पंडित की हँसी करने लगे। इससे वह बहुत शर्मिन्दा हो नीचा मुंह कर बैठा रहा। पीछे पुनः केवली महाराज ने कहा कि जिनोक्त आगम का एक २ वाक्य अनंत है, वह मिथ्या दृष्टि को बिलकुल अगोचर है, और

सम्यक् दृष्टि को सुलभ है। अन्धकार को नाश करनेवा
जिस तरह दीपक है उसी प्रकार अज्ञान का नाश कर सम
बोध देने वाला श्रुत आगम है। इसीलिए कहा है कि —

मोहं धियो हरति कापथमुच्छिनत्ति,
संवेगमुच्छ्रयति सत्प्रशमं तनोति।
स्वर्गापवर्गपदवीमुदमातनोति,
जैनं वचः श्रवणातः किमु नातनोति ॥१॥

अर्थ— जो (श्रुत आगम) बुद्धि के मोह को हरते हैं
कुत्सित मार्ग पाखंड का उच्छेद करते है, संवेग की वृद्धि करते
है, श्रेष्ठ प्रशम का विस्तार करते हैं और स्वर्ग तथा मोक्ष
सम्बन्धी हर्ष की वृद्धि करते है। श्रीजिन के वचनों का श्रवण
करने से किस वस्तु का विस्तार नहीं होता अर्थात वह सर्व
पदार्थों को देता है।

जो प्राणी भाव से आगम की भक्ति करता है, वह प्राणी
जड़त्व, अंधत्व, बुद्धिहीनता और दुर्गति को कभी प्राप्त नहीं
करता और जो आगम की आशातना करता है वह प्राणी
दुर्गति को प्राप्त करता है।

इस प्रकार श्रुत भक्ति की महिमा सुन राजा ने श्रुतभक्ति
करने का नियम लिया। कुछ समय तक गृहस्थाश्रम में श्रुत-
ज्ञान और श्रुतज्ञानी की द्रव्य तथा भाव से विधि सहित भक्ति
की। पीछे विशेष रूप से भक्ति करने की जिज्ञासा से राजा
ने ज्येष्ठ पुत्र सुरसेन को राज्य सुपुर्द कर ससाररूप बंधन को

करने के लिए अनन्त ज्ञान को धारण करनेवाले अमरचंद्र मुनि के पास चारित्र ग्रहण किया। धीरे २ सत्तर भेद से संयम का पालन करते हुए ग्यारह अंग का सूत्रार्थपूर्वक अध्ययन कर गीतार्थ हुए। श्रुत भक्ति के लिए नियम में विशेष दृढ़ चित्त हो श्रुतधरों की अन्नपानऔषधादि से निरन्तर उत्साहपूर्वक भक्ति करने लगे।

इस प्रकार भक्ति करते कुछ दिन व्यतीत होने पर एक बार गुरु के साथ भारतिपुरपतन में आये। वहां ईशानदेव-लोकाधिपति राजर्षि मुनि की परीक्षा करने के लिये विप्र का रूप धारण कर मुनि के पास आकर कहने लगा कि हे मुनि! निरस प्राकृत भाषा में लिखे जिनागम को पढ़ने में अत्यंत कष्ट होता है इसलिए उन्हें छोड़ संस्कृत भाषा जो कि देवभाषा कहलाती है उसमें लिखे आगमों को पढ़ो जिससे आत्मा का वास्तविक कल्याण हो।

समता सिंधु राजर्षि मुनि विप्र के वचन सुन मधुर वाणी से बोले— विप्र! व्यर्थ में जिनागम को निंदा कर क्यों पाप का भागी बनता है? जिनोक्त आगम की निंदा करनेवाला प्राणी अतिशय क्लिष्ट और तीव्र विपाकवाले कर्म बंधकर मूक और अज्ञानी होता है, हीन योनि में जन्म लेता है और दुर्गति में जाता है और वहां पूर्व कर्मवश अतिशय दुःख को भोगता है इसलिए कहता हूं कि—

तित्थयर पवमण सुय, आयरियं गणहरं महड्ढियं।
आसाएवो वहुसो, अनन्तसंसारिओ होइ ॥२॥

अर्थ– तीर्थंकर, प्रवचन, श्रुत, आचार्य, गणधर और महर्धिक की आशातना करनेवाला अनन्त संसारी होता है। महा मोहरूप अंधकार युक्त संसाररूप मार्ग में विचरण करने वाले प्राणियों को जिनागम दीपक तुल्य है। इसीलिए कहा है–

अन्धयारे दुरुत्तारे, घोरे संसार सागरे।
एसोव महादीवो, लोआलोआवलोयणे ॥१॥

एसो नाहो अणाहारं, सव्व भूआण भावओ।
भावबंधु इमोचेव, सव्व सुरकाण कारणं ॥२॥

अर्थ– मोहरूप अंधकार से पूर्ण और दुस्तर भयंकर संसार समुद्र में लोकालोक को प्रगट करने में यह (श्रुत) महान् दीपक तुल्य है और निराधार जीवों का भाव से नाथ और भाव से बंधु तथा निश्चय सर्व सुख का कारण है।

इस प्रकार राजर्षि मुनि के श्रुत भक्तियुक्त अमृत तुल्य वचनों को श्रवण कर, ईशानेंद्र प्रसन्न हो प्रगट हुआ और मुनि को प्रदक्षिणा दे उनकी स्तुति करने लगा। पीछे इन्द्र गुरु महाराज के पास जाकर पूछने लगा कि हे प्रभु! भक्ति पूर्वक श्रुत की भक्ति करने से इन मुनि को क्या फल मिलेगा? गुरु महाराज ने कहा देवेन्द्र! यह मुनि श्रुत भक्ति के प्रभाव से इन्द्रों को भी पूज्य जिनपद को प्राप्त करेंगे। इस तरह आगम भक्ति के फल को जानकर ईशानेंद्र गुरु तथा मुनि को पुनः भावपूर्वक वंदन कर उनकी स्तुति कर अपने स्थान को लौट गया।

राजर्षि मुनि निर्मल चारित्र का पालन कर श्रुत भक्तिपद का आराधन कर देवलोक हो दशवें प्राणत देवलोक में बीस सागरोपम के आयुष्य वाले देव हुए । यहाँ से चव महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पदवी प्राप्त कर अनन्त आनन्दमय मोक्ष सुख को प्राप्त करेंगे ।

विंशति तीर्थ पद आराधन विधि

"ॐ नमो तीत्यस्स"

इस पदको २० माला गिने

इस पद के ३८ खमासमण देवें। प्रत्येक खमासमण से पूर्व यह दोहा कहे।

दोहा

तीर्थ यात्रा प्रभाव छे, शासन उन्नति काज।
परमानन्द विलासता, जय जय तीर्थ जहाज॥

१ सर्वथा प्राणातिपात विरमणवंत श्री साधुतीर्थ गुणाय नमः
२ सर्वथा मृषावाद विरमणवंत श्री साधुतीर्थ गुणाय नमः
३ सर्वथा अदत्तादान विरमणवंत श्री साधुतीर्थ गुणाय नमः
४ सर्वथा मैथुन त्यागवंत श्री साधुतीर्थ गुणाय नमः
५ सर्वथा परिग्रह त्यागवंत श्री साधुतीर्थ गुणाय नमः
६ समस्त पृथ्वीकाय जीव रक्षकाम श्री साधुतीर्थ गुणाय नमः
७ समस्त अपकाय जीव रक्षकाय श्री साधुतीर्थ गुणाय नमः
८ समस्त तेजस्काय जीव रक्षकाय श्री साधुतीर्थगुणाय नमः
९ समस्त वायुकाय जीव रक्षकाय श्री साधुतीर्थगणाय नमः

० समस्त वनस्पतिकाय जीव रक्षकाय श्री साधुतीर्थं गुणाय नमः

१ समस्त त्रसकाय जीव रक्षकाय श्री साधुतीर्थं गुणाय नमः

१२ सर्वथा क्रोध दोष रहिताय श्री साधुतीर्थं गुणाय नमः

१३ सर्वथा मान दोष रहिताय श्री साधुतीर्थं गुणाय नमः

१४ सर्वथा माया दोष रहिताय श्री साधुतीर्थं गुणाय नमः

१५ सर्वथा लोभ दोष रहिताय श्री साधुतीर्थं गुणाय नमः

१६ समस्त रागांश दोष रहिताय श्री साधुतीर्थं गुणाय नमः

१७ समस्त द्वेषांश दोष रहिताय श्री साधुतीर्थं गुणाय नमः

१८ सर्व सम्यकत्वगुणजननी लज्जागुण युक्ताय देशविरति रूप श्री तीर्थं गुणाय नमः

१९ दयागुण युक्ताय देशविरति रूप तीर्थं गुणाय नमः

२० कुमति कदाग्रह कुयुक्ति पक्षपात रहितायमध्यस्थ गुणयुक्ताय रूप तीर्थं गुणाय नमः

२१ सर्व मन वचन कायैः क्रूरता दोष रहित सौम्यगुण युक्ताय देशविरति तीर्थं गुणाय नमः

२२ विद्वान सर्व सम्यग्गुण राग रूप देशविरति तीर्थंगुणाय नमः

३ क्षुद्रता तुच्छता दोषरहिताय अतिगम्भीर उदारता गुण

सहित स्वपर भेद रहित सर्वजनोपकारी
देशविरति रूप तीर्थगुणाय नमः

२४ पूर्व भवकृत दयाधर्म फलेन सर्व जन दर्शनीय
सर्वाङ्गउपाङ्ग सम्पूर्णाङ्ग शुद्ध संघयणी
धर्मप्रभावक देशविरति रूप तीर्थ गुणाय नमः

२५ पापकर्म वर्जित जगन्मित्र सुखोपासनीय सौम्य
प्रकृति देशविरति रूप तीर्थगुणाय नमः

२६ द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावैः लोकविरुद्ध धर्म विरुद्ध
वर्जन रूप देशविरति तीर्थ गुणाय नमः

२७ मलिनक्लिष्ट क्रूरता दोष रहित सदय मनोज्ञरूप
देशविरति रूप तीर्थ गुणाय नमः

२८ इहपरलोकापथदायक राग, द्वेष, शोकः जन्म,
जरा, मरण, दुर्गतिपातन रूप श्रडसठ लौकिक
तीर्थ वर्जक देशविरति रूप तीर्थ गुणाय नमः

२९ सर्वजनावंचक विश्वसनीय प्रशंसनीय भावैकसर्वजन
धर्मोधमकारी देशविरति श्री तीर्थ गुणाय नमः

३० स्वकार्य गौण गणक परकार्य मुख्यकर साधक
सर्वजन उपादेय वचनरूप दाक्षिण्यवान्
देशविरति तीर्थ गुणाय नमः

३१ याथा तथ्य धर्म ज्ञापक परविषय

अनर्थं वर्जक सौम्यरूप दृष्टि मध्यस्थ
देशविरति तीर्थ गुणाय नमः
३२ धर्मतत्वज्ञापक शुभकथाकथक विवेकगुणोद्दीपक
अशुभकथावर्जक देशविरति तीर्थ गुणाय नमः
३३ आप्त धर्मशील परिवार कुटुम्ब अनुकूल विघ्न
रहित धर्म साधने साहायकारि सुपक्षि
देशविरति तीर्थ गुणाय नमः
३४ अतीतानागतवर्त्तमानहेतु हेतु कारण कार्य दर्शि
सर्वथा स्वहित कार्यकरणरूप दीर्घदर्शि
देशविरति तीर्थ गुणाय नमः
३५ सर्व पदार्थ गुण दोष ज्ञायक सुसंगि विशेषज्ञ
देशविरति तीर्थ गुणाय नमः
३६ वृद्धपरम्परा ज्ञायक सुसंगतिरूप वृद्धानुगामि
देशविरति तीर्थ गुणाय नमः
३७ सर्व गुण मूल रत्नत्रयी तत्वत्रय शुद्धि प्रापक
विनय रूप देशविरति तीर्थ गुणाय नमः
३८ धर्माचार्यस्य बहुमान कर्ता स्वल्पमपि उपकार
कारिभ्यो अविस्मारक परोपकारकरण
तत्पर कृतज्ञ सदा परहितोपदेशकरण
शील देशविरति तीर्थ गुणाय नमः

खमासमण के बाद ३८ लोगस्स का कायोत्सर्ग करे।

सत्कार करे, साधर्मी को वस्त्रादि की पहिरावनी करे, प्रभु गुण गायक को उदार चित्त से दान देवे, देव गुरु धर्माचार्य की पधरावनी करे, गुणी को दान देवे। ये सब क्रिया करके ४०० उत्तम मोदक रूपा सोना अथवा रत्न गर्भित करके साधर्मियों को देवे, उस मोदक में से एक भी दूसरे धर्म वाले को धर्म समझकर न देवे, न देना उचित है। इस विधि से शुद्ध श्रद्धावान हो बीसस्थानक का तप आराधन करे तो इस लोक में मान, स्नेह, प्रतिष्ठा, सुख, सौभाग्य अनेक ऋद्धि प्राप्त होती है। परभव में देवलोक का सुख अनुभव करके तीसरे भव में सकल सुरासुर वन्दनीय पूजनीय तीर्थंकर पद को प्राप्त करते हैं। समस्त कर्म क्षय करके केवलज्ञान दर्शन, चारित्र पाकर शाश्वत सुख को पाते हैं।

इस पद की आराधना से मेरुप्रभ तीर्थंकर हुए जिनकी कथा इस प्रकार है।

बीसवें प्रवचन प्रभावना स्थानक आराधना पर मेरूप्रभ राजा की कथा

भरतक्षेत्र में सूर्यपुर नामका नगर था। वहां अरदमन राजा राज्य करता था। उसके मदनसुन्दरी और रत्नमंजरी दो पटराणियां थीं। उन राणियों के मेरुप्रभ और महासेन दो पराक्रमी पुत्र हुए। समय व्यतीत होने पर उन्होंने युवावस्था में पैर रखा।

एक दिन रत्नमंजरी ने अपने पुत्र महासेन कुमार को राज्य का लोभी बनाया, और खुद ने मदनसुन्दरी के पुत्र मेरुप्रभ को मारने के लिए कुमार की धाय के द्वारा जहर देने का षड़यन्त्र रचा। रत्नमंजरी की योजनानुसार वह धाय जहर ले मेरुप्रभ के पास आई, परन्तु कुमार के पुण्य प्रभाव से उस धाय के विचार बदल गये और वह बोली कुमार! तुम बिना किसी को बताए गुप्त रीति से यहां से चले जाओ नहीं तो तुमको जान से हाथ धोना पड़ेगा।

धाय के उक्त मर्मयुक्त वाक्य सुन मेरुप्रभ बोला— तू यह क्या कहती है? मुझे बराबर समझ में नहीं आया। साफ २ कह कि मैं किसलिए चला जाऊँ? मुझे यहां किसका भय है?

धाय ने कहा कुमार! तुमको यहां से जाने के लिए कहती हूँ यह सत्य ही है क्योंकि आपकी सोतेली माता ने अपने पुत्र महासेन को राज्य दिलाने और आपको मारने के कई षड़यन्त्र रचे हैं। इसमें प्रथम तो मेरे द्वारा ही आपको भोजनादि में जहर देने की व्यवस्था की है। देखो यह जहर है। ऐसा कह अपने पास का जहर बताया और कहा— मेरे से यह घातकी काम नहीं हो सकेगा। ऐसा समझ मैंने सर्व हकीकत आपको बतादी। अब आप यहां से शीघ्र चले जाओ नहीं तो वह पापिष्टा मुझे और आपको मार डालेगी। यदि आप यहां से चले जाओगे और जीवित रहोगे तो किसी भी उपाय से यहां का राज्य प्राप्त कर सकोगे। मेरे को वह पूछेगी तो मैं कोई जवाब दे उसकी शंका को दूर कर दूंगी।

को ढूंढ़ने के लिए मनुष्य निरन्तर घूमने लगे। कुछ दिन बा ढूंढते २ राजा को पता चला कि कुमार शांतिपुर नगर में है, इसलिए कुमार को लिखकर आदमी भेजा कि वह पत्र पढ़ते ही तुरन्त यहाँ आ जावे। पिता का पत्र पढ़ कुमार तुरन्त राजा के पास आया। कुमार को देख राजा बोला बेटा! तुम एकाएक इस तरह चुपचाप क्यों चले गये? क्या किसी ने तुम्हारा अपमान किया था? अथवा कोई बात तेरे हृदय में चुभ गई थी?

कुमार ने कहा पिताजी! मेरे मन में कोई बात नहीं थी और न किसी ने मेरा अपमान किया। सिर्फ देशान्तर देखने की इच्छा से ही गुप्त रीति से चला गया। क्योंकि शायद पूछने पर आप मुझे जाने देते या नहीं। इस प्रकार राजा के मन का समाधान किया परन्तु पूर्व को सत्य बात कह सौतेली माता के दुष्ट आचरण को नहीं बताया। देखो सज्जनता।

राजा ने कहा परन्तु बेटा! तुझे मेरे बुढ़ापे की तरफ तो देखना था? खैर अब जो होना था वह तो होगया। तू आगया यही बहुत आनन्द की बात है। अब तू राज्य ग्रहण कर और मुझे छुट्टी दे ताकि मैं संसार सिंधु को पार करने के लिए चारित्र अंगीकार करूँ।

कुमार ने कहा पिताजी! ऐसा कौन हीन भागी होगा जो धर्म साधन में बाधा डाले। आप शौक से चारित्र अंगीकार करो परन्तु यह राज्यभार तो मेरे भाई महासेन को दो।

मैं उसकी सेवा में रहूँगा। ऐसा करने से मेरी सौतेली माता को विशेष प्रसन्नता होगी। मुझे राज्य तृष्णा जरा भी नहीं है।

राजा ने कहा कुमार! ऐसा नहीं हो सकता। जो योग्य होता है उसे ही राज्य दिया जाता है। तुझे राज्य देने से तेरी सौतेली माता नाराज हो तो इसकी चिन्ता करने की जरूरत नहीं। मेरी इस आज्ञा का तो तुझे पालन करना ही पड़ेगा। इसमें तुझे अब कुछ बोलने की जरूरत नहीं है।

फिर राजा ने मेरुप्रभ कुमार को राज्य भार दे और महासेन को युवराज पदवी दे चारित्र ग्रहण कर दृढ़ चित्त से उसका पालन कर अन्त में शुभ ध्यान से काल कर स्वर्ग में गये।

मेरुप्रभ राजा ने न्याय युक्त राज्य करते हुए कुरु राजा की पुत्री त्रैलोक्यसुन्दरी के साथ ब्याह किया। देवता के सम सुख भोगते हुए राणी से एक पुत्र और पुत्री हुए। मेरुप्रभ को सुखरूप लीला देख रत्नमंजरी निरन्तर हृदय में द्वेष करने लगी और उसका नाश करने का प्रयत्न करने लगी। विविध प्रकार के पापयुक्त विचारों से तर्क वितर्क करते रत्नमंजरी ने एक युक्ति ढूंढ़ निकाली। हमेशा मेरुप्रभ राजा के लिए सुरभि पुष्प की माला,ले जाने वाले माली को बुलाकर कहा कि यदि तू मेरी बताई हुई युक्ति से मेरुप्रभ को मार डालेगा तो मैं तुझे मुँह मांगा इनाम दे तेरा दारिद्र दूर हो उतनी मोहरें दूंगी।

माली ने कहा महाराणी! मेरे से यह काम नहीं होगा। क्योंकि कदाचित यह बात राजा को मालूम हो जाय तो मेरे

सारे कुटुम्ब का नाश हो जायगा। माताजी! मुझे आपकी मोहरें नहीं चाहिए।

माली को डरता देख समय को जाननेवाली रत्नमंजरी ने सुवर्ण मोहरो की थैला को खाली कर उसके सामने ढेर कर कहा— ले देख इतने धन से तेरी सारी जिंदगी सुख से व्यतीत होगी। तेरे मन में बात खुल जाने का जो भय है वह मैं जानती हूँ परन्तु मेरे बताए उपाय से वह क्षण में प्राण रहित हो जायगा और किसने मारा इसकी किसी को खबर नहीं पड़ेगी। देख यह तालपुट विष की शीशी है। इसका जरा भी स्पर्श होने से मनुष्य प्राणरहित हो जाता है। तुझे इसे किस तरह काम में लेना है वह सुन। राजा के लिए तू हमेशा पुष्प माला ले जाता है, उस माला के एक पुष्प पर शीशी में से दो बूंद डालना पीछे वह माला राजा को देना। बस तुझे इतना ही काम करना है। बोल इस प्रकार करने से कोई जान सकेगा कि यह काम माली का है।

चकाचौंध करने वाली सुवर्ण मोहरों के ढेर को देख घोर कृत्य करने को माली का मन ललचाया। बिचारा गरीब माली राणी के पाप पूर्ण जाल में फँस नमकहराम बन बोला— महाराणीजी! क्या इतनी ही मोहरें मिलेंगी? राणी ने कहा बोल क्या कहता है? इतनी मोहरें तो कम रहेंगी। ले यह दूसरी थैली। ऐसा कह दूसरी थैली देकर कहा— काम पूर्ण होने पर और भी इनाम दूगी।

पापिष्टा राणी की युक्ति सफल हुई। माली लोभग्रस्त

हो राणी की बात मान वहाँ से गया। हमेशा के नियमानुसार दूसरे दिन माली ने सुन्दर सुगन्धित पुष्पों की माला बनाकर दरबार में आकर महाराज को दे पीछे अपने घर आया। उस समय राजा अपने छोटे भाई और दूसरे सरदारों के साथ बैठा वार्त्तालाप कर रहा था। माली को दी हुई माला को स्नेह से लघु भाई के गले में डाल दी। थोड़ी देर में पुष्प में रखे विष का स्पर्श होते ही महासेन कुमार वृक्ष की शाखा टूटे उस प्रकार एकदम मूर्छित हो पृथ्वी पर बेसुध अवस्था में गिर पड़ा। अचानक यह घटना देखकर सर्व राजकुटुम्ब और राजमंडल वहाँ इकट्ठा होगया। राणी रत्नमंजरी ने अपने पुत्र के गले में पुष्पमाला देख तुरन्त सावधान हो गई कि मेरा पापकर्म मुझे ही खा गया। ऐसा समझ छाती कूटती रुदन करती हुई कहने लगी। हे देव! तूने मेरे पर यह क्या जुल्म किया? मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है? अरे बेटा! अब मैं कैसे जीवित रहूँगी? इस प्रकार विलाप करती हुई हृदय व मस्तक पीटने लगी।

राणी वगैरह को अत्यन्त विलाप करते देख मेरुप्रभ राजा महासेन की नाड़ी देख बोला— माताजी अभी घबराने की कोई बात नहीं है क्योंकि नाड़ी चलती है। अभी वैद्यों को बुलाकर भाई का उपचार करवाता हूँ। आप जरा शान्त हो जाओ। राजा की आज्ञा होते ही थोड़ी देर में अनेक वैद्य आगये। नाड़ी देख परीक्षा करके कहा कि किसी ने कुमार पर विष का प्रयोग किया है। सद्भाग्यवशात् हमको जल्दी

बुला लिया वह ठीक किया। अभी उपचार करने से ठीक हो जायंगे। ऐसा कह वैद्यों ने विरेचन वमनादि से विष दूरकर कुमार को होश में लाकर कहा कि कुमार के गले में जो पुष्प माला है उसी मे विष मिला है। क्योंकि इसके वास्तविक रूप, रस और गन्ध में फर्क मालूम होता है। वैद्यों के कहने से तुरन्त माली को बुलाकर राजा ने धमकी दे कहा कि बोल इस माला में तूने क्या डाला है?

माली ने कहा—महाराज इसमें सुगंधित फूल हैं और दूसरा क्या हो सकता है।

राजा ने कहा—अरे धूर्त यह तो सबको दिखाई देता है। परन्तु इन पुष्पों में तेने क्या डाला है ? जो बात है वह सत्य कहेगा तो छोड दूगा नही तो अभी मरवा डालूगा।

राजा के अभय वचन से माली निर्भय हो सत्य हकीकत कहने लगा। महाराज ! आपकी सौतेली माता रत्नमंजरी राणीजी ने आपको मारने के लिए मुझे दो सुवर्ण मोहरों की थैली दी। साथ मे एक तालपुट विष की शीशी देकर कहा कि इसमें से दो बूद पुष्प माला में डाल यह माला तू राजा को देना और इससे राजा थोड़ी देर में यमलोक पहुंच जावेंगे। मुझ अभागे ने सुवर्ण मोहरों के लोभ से यह भयंकर नीच काम किया है। हे कृपानाथ ! इस तरह जो सच बात थी वह मैंने आपको बतला दी है। अब आप जो ठीक समझें वैसा करें। वास्तव में तो मैं अपराधी हूँ।

माली की बात सुन राजा क्रोधित हो रत्नमंजरी से कहने लगा अरे नीच कृतघ्न पाप मूर्ति संसार के क्षणिक पौद्गलिक सुखों में आसक्त हो पापपूर्ण राज्य लक्ष्मी के लोभ से मेरे को मारने वाली राक्षसणी! तुझे धिक्कार है। जिस समय महाराज मौजूद थे और मुझे राज्य दे रहे थे उस समय यदि मैं तेरे पूर्व कृत्य बतला देता तो तेरी क्या दशा होती ? मैंने मेरी सज्जनता नहीं छोड़ी और तेरा प्रपंचजाल प्रकट नहीं किया उसका तू यह बदला दे रही है। अरे मायावनी! मैं तुझे क्या शिक्षा दूं? ऐसा कहते और विचार करते हुए राजा का चित्त विरक्त होने लगा. इसलिए पुनः बोला— 'माता इसमें तेरा दोष नहीं है। तूने राज्य लक्ष्मी के लोभ से ही यह कृत्य किया है। विद्वान् पुरुषों ने कहा है कि राज्य भोक्ताओं को अन्त में नरक मिलता है क्योंकि उसको प्राप्त करने में अनेक प्रकार के पापाचरण करने पड़ते हैं। जैसे २ वह प्राप्त होता है वैसे २ उसका मोह बढ़ता जाता है, इससे बार २ पापाचरण करने को मनुष्य प्रेरित होता है और अन्त में दुर्गति में पड़ दीर्घकाल तक असह्य दुःख सहता है। इसलिये अब मुझे दुर्गति के हेतु रूप मृग तृष्णा की तरह राज्य लक्ष्मी की जरूरत नहीं है। आज से मैं मेरा हक़ इस पर से उठा लेता हूँ और महासेन के सुपुर्द करता हूँ। यह कह मेरुप्रभ राजा वैरागी हो महासेन कुमार को राज्य दे अभयघोष आचार्य से वैराग्य पूर्ण हृदय से चारित्र अंगीकार किया। गुरु के पास रह विनयपूर्वक द्वादशांगी का अध्ययन कर मुनि गीतार्थ हुए। पीछे गुरु ने योग्य जान अपने पाट पर स्थापित कर आचार्य पदवी प्रदान की।

एक बार मेरूप्रभाचार्य अनेक मुनियों सहित उग्र विहार करते हुए चित्रकूट नगर के समीप आकर ठहरे। आचार्य महाराज को आए जान नगर निवासियों ने उत्साह पूर्वक आकर गुरु की वंदना कर देशना सुनने को बैठे। गुरु महाराज की मधुर देशना से भव्यजनों को उपदेश देने लगे। उस समय एक यक्ष को भी गुरु महाराज की देशना श्रवण कर ज्ञान हुवा। इसलिए उसने गुरु के सामने देव माया से विविध प्रकार का नृत्य किया। इससे आचार्य की प्रशंसा खूब बढ़ी। नगर में सब जगह यही बात होने लगी कि नगर बाहर महान् प्रभाविक आचार्य पधारे हैं जिनके सामने देव भी नृत्य करते हैं। यह प्रशंसा उस नगर के राजा जितारी के सुनने में आई। वह सामन्तादिकों के साथ गुरु महाराज की वंदना करने आया। विनयपूर्वक वंदना कर राजा उचित स्थान पर बैठा। इसलिये गुरु ने राजा को प्रतिबोध देने को पुनः देशना शुरू की।

'हे भव्यजनो ! यह संसार समुद्र केवल दुःख से ही परिपूर्ण है। इसमें पड़े हुए प्राणी को धर्म के सिवाय किसी का सहारा नहीं है। जन्म जरा और मरणादि दुःखों से छुटकारा पाने के लिए जिनोक्त धर्म के सिवाय कोई दूसरा धर्म नहीं है। यथार्थ तत्व को जाननेवालों ने धर्म दो प्रकार का बताया है। एक देश से दूसरा सर्व से। देश से गृहस्थ को उचित है। और सर्व से अणगार को। भावपूर्वक धर्म का सेवन करने से मनुष्य अन्त में अव्याबाध मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त करता है। ऐसा समझ धर्म में रुचि रखो।

गुरु महाराज की देशना श्रवण कर जितारी राजा को प्रतिबोध हुआ और श्रावक के बारह व्रत अंगीकार कर अनेक प्रकार से जिन शासन की प्रभावना की। इसके बाद गुरु महाराज वहां से विहार कर ग्राम नगरादि में विचरते वेलापुर नगर में पधारे।

वहां नगर बाहर के उद्यान में लक्ष्मीदेवी के मंदिर के पास देशना प्रारम्भ की। उनकी देशना से वहां की लक्ष्मीदेवी को समकित हुआ और गुरु के आगे सुवर्ण की वृष्टि की जिससे आचार्य महाराज की महिमा नगर में फैल गई। गुरु की ख्याति सुन उस नगर का अरिमर्दन राजा परिवार सहित गुरु की वंदना करने आया। उसे प्रतिबोध देने गुरु महाराज ने अमृत समान देशना प्रारम्भ की।

अहो भव्यजनो ! इस संसार में दुःख से प्राप्त होने वाले मानव जन्म को प्राप्त कर उसे धर्म रहित प्रमाद से व्यर्थ मत खोओ। पूर्वपुण्यवशात् मनुष्य जन्म प्राप्त होने पर भी गुरुमुख से धर्म श्रवण की प्राप्ति दुर्लभ है, यदि वह भी सुयोग मिल जाय तो धर्म पर श्रद्धा, दृढ़ प्रेम और प्रमाद रहित उसका पालन करना महादुर्लभ है। ऐसा जान प्रमाद छोड़ उसकी साधना में उद्यम करो। इस प्रकार गुरु की देशना श्रवण कर राजा ने सम्यकयुक्त श्रावक के बारह व्रत भाव से अंगीकार किये।

इसके बाद महिमासागर मुनिराज वहां से विहार कर ठाणापुर नगर में आये। आचार्य के आगमन की सूचना नगर

एक बार मेरुप्रभाचार्य अनेक मुनियों सहित वि
करते हुए चित्रकूट नगर के समीप आकर ठहरे।
महाराज को आए जान नगर निवासियों ने उत्सा
आकर गुरु की वंदना कर देशना सुनने को बैठे। गुरु म
की मधुर देशना से भव्यजनों को उपदेश देने लगे। उस
एक यक्ष को भी गुरु महाराज की देशना श्रवण कर ज्ञान
इसलिए उसने गुरु के सामने देव माया से विविध प्रका
नृत्य किया। इससे आचार्य की प्रशंसा खूब बढ़ी। न
सब जगह यही बात होने लगी कि नगर बाहर महान् प्रभ..
आचार्य पधारे हैं जिनके सामने देव भी नृत्य करते हैं।
प्रशंसा उस नगर के राजा जितारी के सुनने में आई।
सामन्तादिकों के साथ गुरु महाराज की वदना करने आया
विनयपूर्वक वदना कर राजा उचित स्थान पर बैठा। इसलि
गुरु ने राजा को प्रतिबोध देने को पुनः देशना शुरू की।

'हे भव्यजनो! यह संसार समुद्र केवल दुःख से ही प
पूर्ण है। इसमें पड़े हुए प्राणी को धर्म के सिवाय किसी
सहारा नहीं है। जन्म जरा और मरणादि दुःखों से छुटका
पाने के लिए जिनोक्त धर्म के सिवाय कोई दूसरा धर्म नहीं
है। यथार्थ तत्व को जाननेवालों ने धर्म दो प्रकार का बताया
है। एक देश से दूसरा सर्व से। देश से गृहस्थ को उचित है।
और सर्व से अणगार को। भावपूर्वक धर्म का सेवन करने से
मनुष्य अन्त में अव्याबाध मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त करता है।
ऐसा समझ धर्म में रुचि रखो।

गुरु महाराज की देशना श्रवण कर जितारी राजा को प्रतिबोध हुआ और श्रावक के बारह व्रत अंगीकार कर अनेक प्रकार से जिन शासन की प्रभावना की। इसके बाद गुरु महाराज वहां से विहार कर ग्राम नगरादि में विचरते वेलापुर नगर में पधारे।

वहां नगर बाहर के उद्यान में लक्ष्मीदेवी के मंदिर के पास देशना प्रारम्भ की। उनकी देशना से वहां की लक्ष्मीदेवी को समकित हुआ और गुरु के आगे सुवर्ण की वृष्टि की जिससे आचार्य महाराज की महिमा नगर में फैल गई। गुरु की ख्याति सुन उस नगर का अरिमर्दन राजा परिवार सहित गुरु की वंदना करने आया। उसे प्रतिबोध देने गुरु महाराज ने अमृत समान देशना प्रारम्भ की।

अहो भव्यजनो! इस संसार में दुःख से प्राप्त होने वाले मानव जन्म को प्राप्त कर उसे धर्म रहित प्रमाद से व्यर्थ मत खोओ। पूर्वपुण्यवशात् मनुष्य जन्म प्राप्त होने पर भी गुरुमुख से धर्म श्रवण की प्राप्ति दुर्लभ है, यदि वह भी सुयोग मिल जाय तो धर्म पर श्रद्धा, दृढ़ प्रेम और प्रमाद रहित उसका पालन करना महादुर्लभ है। ऐसा जान प्रमाद छोड़ उसकी साधना में उद्यम करो। इस प्रकार गुरु की देशना श्रवण कर राजा ने सम्यकयुक्त श्रावक के बारह व्रत भाव से अंगीकार किये।

इसके बाद महिमासागर मुनिराज वहां से विहार कर ठाणापुर नगर में आये। आचार्य के आगमन की सूचना नगर

पूर्वोक्त अभिग्रह युक्त तपस्या करते दो माह व्यतीत हो गए फिर भी अभिग्रह पूर्ण नहीं हुआ। फिर भी आचार्य महाराज जरा भी विचलित नहीं हुए। पीछे अंतराय कर्म के क्षयोपशम से एक दिन राजा का पट्टहस्ति आलान स्तम्भ उखाड़ अपने लिए रखा हुआ मोदक का थाल सून्ड से उठा नगर में मन्दोन्मत्त हो फिरने लगा। फिरते २ वह हाथी अभिग्रह धारण करने वाले सूरि महाराज के समीप आकर खड़ा रहा और थाल के मोदक भक्ति भाव से वहराने लगा। सूरीश्वर ने अपना अभिग्रह यथार्थ रीति से पूर्ण होता जान मोदक ग्रहण किया। उस समय देवताओं ने पांच दिव्य प्रकट किए और रत्नों की वृष्टि करी। इससे सारे नगर में आनन्दोत्सव मनाया गया और बहुत से भव्य जीवों को बोध हुआ। इससे शासन की अतिशय उन्नति हुई।

इसके बाद वहा से विहार कर सूरीश्वर मथुरा नगर में आयें। वहां का राजा तथा प्रजा सब बौद्धधर्मानुयायी होने से नगर में गये हुए साधुओं को कही भी गोचरी उपलब्ध नहीं हुई और साथ में सब उनकी निभंछना करने लगे। यह देख आचार्य महाराज ने विद्या मन्त्र के प्रभाव से निभ्रछना करने वाले बौद्धों को स्तंभित कर दिए। यह बात वहां के राजा हेमध्वज को मालूम हुई तो उसने जैनाचार्य को मारने के लिए सेना भेजी। सेना को आती देख सूरि के भक्त देवताओं ने समस्त सेना को चित्र के समान स्तम्भित कर दी और आकाशवाणी करी कि जो तुम सब को जीवित रहने की

इच्छा हो तो आचार्य महाराज के पास जाकर अपने किए अपराध की क्षमा मांग जिनोक्त धर्म को अङ्गीकार करो।

यह आकाशवाणी सुन सब विस्मित हुए और गुरु के पास आकर नमस्कार किया और श्रावक धर्म अङ्गीकार किया। पीछे सब ने भक्ति पूर्वक गोचरी के लिए साधुओं को निमन्त्रित किया। फिर सूरि की स्तुति करते हुए कहने लगे कि हे प्रभु ! आपने हमको संसार समुद्र में डूबते हुए को बचाकर मिथ्यातत्व छुड़ाकर सम्यग् धर्म प्राप्त कराया है इसलिए हम आपके अत्यंत ऋणी हैं। इस तरह उस नगरी के राजा आदि नगर जनों को शुद्ध धर्म में आरूढ़ कर शासन की उन्नति कर आचार्य वहां से नागपुर नगर में आये।

गुरु महाराज को आए जान सब नगर निवासी तथा राजा परिवार सहित वन्दन करने गये। राजादि नगरजनों को आए जान सूरीश्वर ने संसाररूप ताप से संतप्त हुए प्राणियों को मेघ की वृष्टि समान देशना आरम्भ की। गुरु की देशना से राजा को प्रतिबोध हुआ और भावपूर्वक सम्यग् धर्म अङ्गीकार किया। उस समय उस राजा के दुश्मन म्लेच्छ राजा की सेना चढ़ आई। इस तरह अचानक अगणित म्लेच्छों की सेना को आई जान राजा घबरा कर गुरु से कहने लगा—कृपासिन्धु ! अब इस शत्रु से मेरी प्रजा की रक्षा किस प्रकार होगी ? यदि मुझे पहले खबर हो जाती तो मैं चढ़ाई की तैयारी करता परन्तु अब क्या हो सकता है ?

गुरु ने कहा—राजन् ! धर्म के प्रभाव से उपद्रव का नाश होगा । तू निश्चित हो तेरे महल में जा और धर्माराधन कर। यह कह राजा को धीरज दे नगर में भेजा। थोड़ी देर में राजा के दूत ने आकर कहा कि महाराज म्लेच्छ सेना के अधिपति को अभी मृत्यु हो गई है और सारी शत्रु सेना में महा उपद्रव हो रहा है और सब अपनी अपनी रक्षा करने को भाग रहे हैं।

यह खुश खबरी सुन राजा अत्यन्त हर्षित हुआ और गुरु महाराज के पास आकर पुनः भावपूर्वक वंदना की। नगर में जगह २ आनन्दोत्सव कर शासन की खूब प्रभावना की।

पीछे मेरुप्रभाचार्य वहां से विहार कर पुनः भोगपुर नगर में पधारे। गुरु का आगमन सुन नगर निवासी उत्साह पूर्वक गुरु का वन्दन करने गए और देशना श्रवण करने को बैठे। सूरि महाराज ने अनेक भवोपार्जित पापकर्मों का नाश करनेवाली देशना दी। उस समय सौ धर्म देवलोकाधिपति वहां आकर सूरि के चरण कमलों में नमस्कार कर स्तुति करने लगा—

हे करुणासिन्धु! हे गुणाकर! हे परमोपकारी सूरिश्वर! आपने जिनोक्त शासन की अत्यन्त उन्नति कर उत्कृष्ट पुण्योपार्जन कर त्रिलोक पूज्य श्री जिननाम कर्म निकाचित बंध किया है। इसलिए आगामी काल में अनेक सुरासुर आपके पद कमलों में नमस्कार कर अपने पापों का क्षय

हुआ हुआ जिससे आपके पवित्र दर्शन कर सका हूँ। इस प्रकार स्तुति कर इन्द्र अपने स्थान पर लौट गया।

सूरि महाराज वहां से विहार कर समेत शिखर पर पधारे। वहां आकर अनशन कर ब्रह्मदेवलोक में महान् समृद्धिशाली देव हुए। वहां से चवकर महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर पद प्राप्त कर अनन्त आनन्दमय मोक्ष सुख प्राप्त करेंगे।

--+--

चैत्यवन्दन

(१)

शांति शयवन्त महन्तरूप, अनुपम गुणधारी । आरावे जिनकूं स्थल, तीर्थंकर शिवकारी ॥ १ ॥ अरिहन्त सिद्ध प्रवचन गणी, स्थविर बहु श्रुत जन तपसी श्रुतदर्शन विनय, आवश्यकवलिदान ॥२ शील क्रिया तप धारिए, वेयावच्च समाधि । ज्ञान गृहण श्रुत भक्ति नौगी,सेवन त्याग उपाधि ॥३॥ ए विंशति स्थानक अमल, सेवो सरधा युक्त। परमातम संपद प्रगट कारक बंधन मुक्त ॥४॥ मानवांछित सह सिद्धकर,क्षायिक सुख भर कंद । जिनको वन्दे भावधर, श्री कुशलेन्दु अमिन्द ॥५॥

(२)

नित्यानंद निराश्रयी नमो सिद्ध भगवान अजर अमर अविनाशिये, प्रभुता परम निधान ॥१॥ अनंतवीर्य शक्तिमयी, आरोगी चिद्रूप। अनन्ताक्षय स्थितिमयी, चिदानन्द स्वरूप ॥२॥दर्शन ज्ञान चारित्र ए, अनंत अपार। आरावे सिध पद लहे माणक भवनो पार ॥ ३ ॥

(३)

चौविस पंदर पिसतालीसनो, उत्रीसनो करिये । दश पचवीस सत्ताविसनो, काउसग्ग मन धरिये ॥ १॥ पंच सडसठ दशवल सीत्तरे नवपण वीसवार अमवास । लोगस्स तणो काउसग्ग धरो गुणस्स ।२॥ वीस सीत्तर इगवन द्वादश ने पंच, एणी परें काउसग्ग जो करे तो जाये भवसंच ॥ ३ ॥ अनुक्रमे काउसग्ग मन गुनि, लेजे वीस थान कराय । जाणीए संक्षेप थी, से समभावधरी मन मांडणीए, जो एक पद आरावे, जिन उत्तम पद पद्मने नमि निज कारज साधे ॥

स्तुति

निरमल आतम भाव प्रकाशक कारक क्षायिक भावीजी, जि
पद वर्धक कर्म निकन्दक बीस थानक भवी सेवीजी जिनवर सहु
स्थानक से वे, एक अनेक भवतो जेजो आराधनते साधन भावे, म
वांछित सब सीझेजी ॥१॥ अरिहन्त सिद्ध प्रवचन आचारज, स्थवि
बहुश्रुत तपसीजी । श्रुत दरशन विनयी आवश्यक, शील क्रि
तपवासीजी ॥गणधर वैयावच सुसमाधी, ज्ञान ग्रहण श्रुत भगती जी
प्रवचनए विंशती पद भापक, जिन नमिए सहुजुग तीजी ॥ २
अट्ठमतप उपवास आंबिल तप ॥ एकासण निज सगतीजी । करि
ओली पट मास भीतर, आराधन बहु भक्तेजी ॥ आरम्भटाली पोप
धारी दोय सहस जप गणिएजी । काउसग्ग कारी दोप निवारी, दे
पूजन श्रुत करिएजी ॥३॥ शासन रक्षक समकित धार
जे सहु सुर सुलकन्दा जी । सानिधकर ज्योते तप करता, वधते भा
अनन्दाजी॥ श्रीजिनलाभ सूरिश्वर शाखा, श्री कुशलेन्दु गणिदाजी
तस पद सेवक मंगल पतिगणि । जो श्रीबाल चन्दाजी ॥ ४ ॥

---

(२)

अरिहन्त सिद्ध पवयण, आचारज थिवराण।
पाठक मुनिवर ज्ञाने, दर्शन विनय वखाण ॥
चारित्र ब्रह्म क्रिया तप गोयम जिन भाण।
संयम, नाणी श्रुत संघ सेवो वीसठाण ॥ १ ॥
उत्कृष्टि जिनवर एकसो सितर धीर।
वलीकाल जघन्ये जिनवर बीस

जिनपाय अनन्ता अतीत अनागत काल।
ए बीसे थानक आराधे गुणमाल ॥ २ ॥
आवश्यक बे वेला जिन वन्दन त्रिकाल।
थानक तप गिणवो सहस दोय सुकुमाल ॥
काउसग्ग गुण स्तवना पूजाप्रभु वनासार।
इम सामी वत्सल करता भवनो पार ॥ ३ ॥
समरीजे अहनिस गुणए गोतुर साथा।
यक्ष यक्षणी सुरपति वेयावच्चकर ताया ॥
थानक तप विधि सुजेसे वे मनरंगे।
देवचन्द आणाए सानिध करे तसु चंगे ॥ ४ ॥

---

(३)

यादिसर अलवेसर जगपति, भविमन सायर चंदाजी। सेत्रुंज-मंडन दुख विहडण, अदभूत ज्योति सोहंदाजी सुख संपति कारण जग तारण, सेवे सुरनर इंदाजी करुणा कर जिनवर उपगारी, कामित सुरतरु कंदजी ॥ १ ॥ अरिहंत सिद्ध प्रवचन आचारज स्थविर पाठक मन आणोजी। साधु नाणदंसण दस मो पद, विनय चारित्र वखाणोजी ॥ ब्रह्म क्रिया तप गोयम जिनपद, समाधि अपूर्व श्रुतजाणोजी। श्रुतभक्ति तीरथ प्रभावना बीस थानक पहिचानोजी॥ २ ॥ श्री मुख जिने सर भाखे, ए पद सेवो प्राणीजी तीर्थंकर पद एहथी लहिये। जिन आगमनी वाणीजी ॥ ज्ञाता अंगे गणधर देवे, विवरीने धरणी आणी जी। ए आराधनथी शिव पद लहिये, निरुपम सुख निसानीजी तीन काल पांचे शक्रस्तव, देववंदन विधी कीजेजी। काउस-ग्गा गुणनो, विधिसु जिन पूजीजेजी ॥ खमासमण विउ-

टक पडिकमणो, स्तवना नित्य सुणीजेजी । कृपाचन्द्र सुयदे वि मनवंछित फल लीजेजी ॥ ४ ॥

(४)

बीस स्थानक सेवो भावधरि नितमेव ॥ १ ॥
अरहंत सबराए आराधे पदएव ॥ २ ॥
जैनागम पाए गणधर वाणी सेव ॥ ३ ॥
शासन देवी सहाये माणक आनदमेव ॥ ४ ॥

(५)

बीस स्थानक नित्यं वंदे ॥ १ ॥
जिन धर्मं सत्यं मन्ये ॥ २ ॥
द्रव्य भाव महंस्तोप्ये ॥ ३ ॥
सिदा ध्यानं सुरं भूयात् ॥ ४ ॥

स्तवन

(१)

(श्री सिद्धाचल भेटीये ए देशी)

बीस थानक तप सेवीए । धरकर शुभ परिणाम लालरे । तीजे भाव में ध्यावतो । बांधे तीर्थ कर नाम लालरे ॥ बी० ॥ १ ॥ ता- रचना अधकी यही । ज्ञाता अनुम सार लालरे । सुणो जो भवियण । चित्त से करिये उधार लालरे ॥ बी० ॥ २ ॥ सुविहित गुरु पासे रहे । बीसथानक तप गुरु सारे । निरएकदस शुभ मन्में । उचरीजे म नेह लालरे ॥ बी० ॥ ३ ॥ अरिहंत सिद्ध

विनयने मूं उलसाय लालरे
गोयम जिन इम लालरे ।
५ ज्ञान नें श्रुत भणी नमुं तीर्थ पद वीस लालरे ॥ वी० ॥ ५ ॥
वैराग्य में एकही पद गुणनो करमेव लालरे । अथवा दिन वीसलगे
वीसे पद गुणमेव लालरे ॥ वी० ॥ ६ ॥ एक ओली षट मास में पूरि-
जेन विशेष लालरे ॥ फेरज विकरणी पड़े, पिछली निष्फल जोय
लालरे गवां ॥ ७ ॥ छठ आठम उपवाससुं, पउवाससु
अथवा देखी शक्तिलालरे पोसहकर आराधिये, देववांदे जिन
भक्ति लालरे ॥ वी० ॥ ८ ॥ संपूरण पद सेवतां, हरो
गई जोग लालरे । तोहीसात पदे सही, पीसह करिए संजोग
लालरे ॥ वी० ॥ ९ ॥ सूरि थिवर पाठक पदे साधु चारित्र सुजांण
लालरे । गौतम तीर्थ पदे सही, सात थांनक मनमान लालरे ॥ वी०
॥ १० ॥ पद पद दीप करे सदा, दोय-दोय जाप हजार लालरे । पडिक
मणे दोय टं कही, करीये पूजा सार लालरे । वी० ॥ ११ ॥ शक्ति
मुजब तप कीजिए, एक ओली करो वीस लालरे । वीसा वीसो च्या-
रसें, तप संख्या कही एम लालरे ॥ वी० ॥ १२ ॥ जिस दिन जो पद
तप करे, तिमके गुण चित्तधार लालरे । काउसग्ग पर दक्षण, मुख
गणिए नवकार लालरे ॥ १३ ॥ जिस पद की स्तवना मुणे, कीजे
जिन पद भक्ति लालरे । पूजन शुभ मन साचवे दिन दिन चढ़ती शक्ति
लालरे ॥ वी० ॥ १४ ॥ मृतक जनम ऋतु काल में, करि धार्यो उप-
वास लालरे सो लेखेनहि लेखवो, निष्फल तप जास लालरे ॥ वी० ॥
॥ १५ ॥ सावज्जत्याग पणो करे, शोक न धारे चित्त लालरे । शील
आभूषण आदरे, मुख सुं बोले सत्य लालरे, ॥ वी० ॥ १६ ॥ जेठ,
आषाढ़ वैशाख में, मिगसर फागुण मांह लालरे । इन षट मास मांहिने
ने व्रत ग्रहिये बड़ भाग लालरे ॥ वी० ॥ १७ ॥ तप पूरण हूं वांचको
निरधार लालरे । कीजे शक्ति विचारने, उच्छवविविध

प्रकार लालरे ॥ वी० ॥ १८ ॥ वीस बीस गीणती तणा, पुस्तक पुठा आदि लालरे। ज्ञान तणी पूजा करे, मुंक्ति जो चावे नित्य लालरे ॥ वी० ॥ १९ ॥ फलौदी नगरनी श्राविका कीधी विधि चित्त लाय लालरे। जनम सफल करवा भणी ओहीजमोक्ष उपाय लालरे ॥ वी० ॥ २० ॥ (कलश) इम वीर जिनवरतणी आज्ञाधार चित्त मझारए। सद्गुदेख आगम तणी स्तवनाकरी तपविधि सारए ॥ वसुनंद सिद्धि चंन्द वरसे चैत्र मास सुहंकरु। मुनि केशरि शनिगच्छ खरतर भणी स्तवना मनहरु ॥२१॥

(२)

(आदि जिणद मया करा-----एदेसी)

वीस स्थानक पद ध्याइये, जननायक पद लायकरे। अरिहंतादिक पद नमो, सकल जतु हितकार करे ॥ वी० ॥ १ ॥ सिद्धि प्रवचन आचारज नमो, स्थविर पाठक पद मोहेरे। साधु ज्ञान दर्शन सेवो, विनय सदा मन मोहेरे ॥ वी० ॥ २ ॥ चारित्र पद मुझ मन वस्यो, गुणिजन करो नितसे वारे ब्रह्म क्रिया तप गौतम, भविजन लहे सुखमे वारे। वी० ।३ ।नमो नमो जिन पद सग से, गुण अनंत उजासीरे। संजम ज्ञान सुत पद सदा, अनुभव रसए प्रकासीरे। वी० । ४ । तीरथ पद पूजो भविजन।, लौकिक अरु सठजोयेरे। चउविह महातीरथ, लोकोत्तर नेए भजीयेरे। वी० । ५ । ज्ञानीए तप जप वर्णव्या बहु विध भवि हितकारी रे वीश थानक सम कोई नहि, इण जग में सुणी प्राणीरे। वी० । ६ । तप महिमा अधिक कहि, विधियुतछद्दे अंगेरे। पूजे भवियण पद सहु, शिव सुख मन चंगेरे ॥ वी० ॥ ७॥ तीर्थंकर पद जेल पद सेवे भवती जेरे। सप्तवली अष्टभव करी, उत्कृष्टेजीवसी मेरे ॥ वी ॥ ८ ॥ नगर अजीमगंज शोभतो, श्रावक श्राविका धुन्य वंतारे। वीसथानक सेवे भाव थी, शाशन उन्नति करं-

तारे। वी० ॥ ९ ॥ तासतणे आग्रहथकी, स्तवन रच्योभाव आणीरे। द्रव्य भावे भवि आदरो, थानक पद हित याणीरे ॥ वी० ॥ १० ॥ वीस थानक पद सेवग, कठिन कर्मते वीजेरे ॥ अनुभव अधिक माण यो, अजर अमर पद लीजिरे वी० ॥ ११ ॥ संवत उगणी वयासीये, तिथ सातम बुध वारोरे। मास आश्विन कृष्ण पक्ष मे, वीस थानक गुण गायोरे ॥ वी० ॥ १२ ॥

कलश

इम वीस थानक जगत वंदन, सकल जन आनंदनो भयो धन दिन आजनोवलि दुःख गयो दूर मनतणो । युग प्रधान जिन चारित्र सद्गुरु, वृहत्खरतर गणतणो पद्म प्रमोदजी कृपाजो कीए स्तवन माणक नित भणो ॥ १३ ॥

(२)

आज आनंद वधावोरे तप सेवो मगन में सेवो मगन में ध्यावो मगन में, वीस थानक सुखकाररे ॥ तप० १ ॥

अरिहंत सिद्ध प्रवचनए नमतां, थाये सुखअपनु दाररे ॥ तप० २ ॥ आचारज थिवरने पाठक साधु नमो सुख काररे ॥ तप० ३ ॥ ज्ञान दर्शन विनय सेवोए, चारित्र गुण अपाररे ॥ तप० ४ ॥ ब्रह्म पदको भवि सेवो निशदिन, क्रिया सदा दिलधाररे ॥ तप० ५ ॥ बाह्यअभ्यंतर तप को ध्यावो गौतम पद दिलदाररे ॥ तप० ६ ॥ जिन संजम की भावना भावो, त्रिभुवनमें हितकाररे ॥ तप० ७ ॥ ज्ञान सदा जयवंतो नमता, पामे सुख अपाररे ॥ तप० ८ ॥ श्रुत पद नमिये भावे भविया, श्रुत वे जगत आधाररे ॥ तप० ९ ॥ श्रीतीरथ पद पूजो गुणि- [illegible] हर्ष अपाररे ॥ तप० १० ॥ एवीसे पद नित नित ध्यावो, [illegible] भवतारेरे ॥ तप० ११ ॥ जिन चारित्र सूरिश प्रसादे, [illegible] ॥ तप० १२ ॥

(सुण २ सेत्रु जगिरि स्वामी------एचाल)

अरिहंतादिक पद नित नमिये, जेथी जग दुःख दूरे गमिये, निज स्वभाव मे भवि नितरमिये सुणो भवि भाव से हित आंणी, बीस-थानक सेवो प्राणी, जिनसे कर्म कठिन होय हाणि ॥ सुणो० ॥ १ ॥ सिद्ध सेवो भवि चित आणी, रह्या एक तीस गुणना खाणी, लोका लोक प्रकाशना नाणी ॥ सुणो० २ ॥ प्रवचन भक्ति भावथी करिये, संसार समुद्र से तरिये, जिन वचन सदा मर दहिये ॥ सुणो० ३ ॥ गुण छत्तीसे रह्या सूरिराया जिन मत को अधिक दिपाया, पचा चार पालन सुखदाया ॥ सुणो० ४ ॥ स्थविर पाठक तत्वना जाण, भाषे जिनवर वचन प्रमाण, तम र मल हरण जग माण ॥ सुणो० ५ ॥ सो हे साधु सदा गुण भरिया' सप्त बीस गुणे पर वरिया, ज्ञानादिक गुणना दरिया ॥ सुणो० ६ ॥ ज्ञान दर्शन को दिलधारो, पाप कर्म थकी मनवारो, रहो शुद्ध क्रिया अनुसारो सुणो० ७ ॥ विनय सेवो सदा सुखदाई, जितमें जनम मरण मिट जाई, नित चारित्र से चित लाइ ॥ सुणो० ८ ॥ सियलको सुरतरु सम जांणी, क्रिया तप सेवो भविप्राणी निसदिन पूजीजेहो प्राणी ॥ सुणो० ९ ॥ गोयम जिन सयम धरो, प्रकटे अधिक अधारो होय जनम मरणछुटकारो ॥ सुणो० १० ॥ ज्ञान भक्ति करो भवि प्राणी, श्रुतिज्ञान को मन तण आंणी, सघ भक्ति सदा सुखदाणी, ॥ सुणो० ११ तप महिमा ज्ञाता सूत्र मे जाणो, तीर्थंकर गोत्र बंधाणो भाषे जिनवर श्रीजगभाणो ॥ सुणो० १२ ॥ वेत्र वसु नद चद बखाणो, जिन चारित्र सूरि गुण राणो-।।। मन तप में भराणो ॥ सुणो० १३ ॥

(५)

ध्यावोरी माइ वीस थानक पद ध्यावो, अरिहंत सिद्ध प्रवचन ए नमतां मन वांछित सुख थाये ॥ ध्या ॥ आचारज स्थाविर ने पाठक साधु सेवे दुःख जाये ॥ ध्या० ॥ १ ॥ ज्ञान दर्शन विनय सेवा थी, चारित्र जग सुखकार ॥ ध्या० ॥ ब्रह्म क्रिया तप को भवि ध्यावो, गौतम पद हितकार ॥ ध्या० ॥ २ ॥ जिन संजम को भविजन पूजो, ज्ञान तणा गुण गावो ॥ ध्या० ॥ श्रुत पद को भवि ध्यावो निस दिन, तीर्थ सदा मन चावो ॥ ध्या० ॥ ३ ॥ प्रभु पूजा पर भावना करिये उजमणो सुविवेक ॥ ध्या० ॥ ए तप महिमाना अधिकार, वर्णव्या ग्रन्थ अनेक ॥ ध्या० ४ ॥ थानक तप सेवन्ता प्राणी, गोत्र तीर्थंकर बांधे ॥ ध्या० ॥ शुभ भावे ए तप की सेवा, माणक मन में आराधे ॥ ध्या० ॥ ५ ॥

---

(६)

(धण केसरकी क्यारीमां रूडी, फूल हजारीरे एहनो देशी) ॥ आज आणन्द सवाई म्हारे वाधी सोम सवाईरे । साजन वीस थानक पद सेवो, जिम मनवांछित फल लेवोरे ॥ सा० ॥ वी० निरमल कायमु कीजे त्रिकरण शुभ ध्यान धरीजे ॥ सा० वी० ॥ अरिहंतादिक वीस पद दाख्या श्री जगदीसेरे । सा० २ वी० ॥ एहनो सेवन कीजे सहू, कठिन करम ते छीजेरे । सा० वी० ॥ मोटो तप यह कहिये भावे करी ते मरदहियेरे ॥ सा० ३ ॥ वी ॥ शील संयमव्रत पाली दोषण मनना सब टालोरे० । सा० वी० ॥ एह वीसोपदराया सेविनभवि [illegible] सा० ॥ ४ ॥ वी० । जे विधमु आराधे तीर्थंकरपद [illegible] ॥ एहना गुण कहे सार सुरगु

न लहे पाररे ॥ सा० ॥ ५ वी ॥ उदयापुरे मन रंग गुरु मुख विधि लहिये सुचंगेरे ॥ मा० वी० ॥ जोरावर बडभागी तेहनी लय प्रभुसुं लागीरे । सा० ६ ॥ वी ॥ उच्छव अधिक मंडाया, करि कीधो जनम प्रमाणरे० । सा० वी० ॥ उजमणा विधिसारी निण विधी चित उदारीरे ॥ सा० ७ वी० ॥ संवत (१८९९) अठारनिनाण, आषाढ वदि बीज वखाणरे । सा० वी० ॥ रूडो कारज कीधो; धन, खरचो जग जस लीधोरे० सा० ॥ ८ वी० ॥ श्रीजिनमहेन्द्रसूरिन्दा, नित वांदे कीर्ति आनंदारे ॥ सा० ९ ॥ ॥ इति ॥

---

(७)

पूछे गोतम वीर जिणंदा, समवसरण बैठा सुखकंदा, पूजित अमर सुरीन्दा केम निकाचे पद जिनचन्दा, कौन विध तप करता भवफन्दा; टाले दुरितह दंदा, तब भावे प्रभुजो गतनिंदा सुण गोतम वसभूति नन्दा, निर्मल तप अरविंदा, वीसथानक तप करत महिंदा, जिम तारक समुदाये वृन्दा, तिम ए सवी तप इंदा ॥ १ ॥ प्रथमपदे अरिहन्त नमीजे, बीजे सिद्ध पवयणपद त्रीजे, आचारज थेर ठवीजे, उपाध्याय ने साधु ग्रहिजे, नाण दसम पद विनय वहीजे, अगीआर में चारित्र लीजे; बभवयधारीणं गणीजे किरीयाणंसवरस करीजे, गोयम जिणाणं लहीजे चारित्र नाण श्रुत तीथ्यस्सकीजे, त्रीजे भव तप करत सुणिजे: ए सवी जिन तप लीजे ॥ २ ॥ आदि नमो पद सगले ठवीस वार पसर वारवलो छवीस दस पणवीस, पाचने सडसठ सेर गनीस सत्तर नव किरिया पंचवीस, वार अठावीस चउवीस, सीनेर इगवन्न पांपीनालिस, पाच लोगस्स काउसग्ग रहिस, नोकरवाली वीस, एक २ पदे उपवास वीस, मास खटे एक ओली करीस, इम सिद्धान्त जगीस ॥ ३ ॥ नकते एकासणु तीवीहार, छठ अठम

मासखमण उदार, पडिकमणां दोय वार, इत्यादिक विधि गुणगम धार, एक पद आराधन भवपार, उजमणुं विविध प्रकार, मातंग यक्ष करे मनोहार, देवी सीद्धाइ शासन रखकर, संघ वीघन क्षपहार, खीमावीजय जस उपर प्यार, सुभ भवीयन धरमी आधार, वीर वीजे जयकार ॥ ४ ॥

---

(८)

पहिले पद अरिहंत नमुं बीजे सर्व सिद्ध ।
त्रीजे प्रवचन मन धरो आचरण प्रसिद्ध ॥ १ ॥
नमो थेराणं पांच में पाठक गुण छट्ठे ।
नमो लोय सव्व साहूण जे छे गुण गरिट्ठे ॥ २ ॥
नमो नाणस्स आठमे दर्शन मन भावो ।
विनय करो गुणवंतनो चारित्र पद ध्यावो ॥ ३ ॥
नमो बंभवय धारणं तेरमे किरियाणं ।
नमो तवस्स चवदमे गोयम नमो जिणाणं ॥ ४ ॥
चारित्र ज्ञान सुअस्स नेए नमो तित्थस्स जाणी ।
जिन उत्तम पद पद्मएलें नमता तोय सुखखाणी ॥ ५ ॥

---

(९)

(वीर सुणो मेरी बीनती एनी ढाल) वीसथानक तप सेविजे, भव्य प्राणीरे आणी मन भाव, श्री अरिहन्त इम उपदीसे, ए तपनारे मोटा परभाव ॥ वी० ॥ १ ॥ नमो अरिहन्ताणं गुणो पद, पहिलेरे मन हरख अपार, द्रव्यत भावत भेदमुं, जिनपुजारे करो आठ प्रकार ॥ वी० ॥ २ ॥ नमो सिद्धाणं एहवो, सुद्ध चित्ते

ठांण, आराधो सिद्ध चक्रनो, जिन थायरे निज जनम प्रमाण ॥ वी० ॥ ३ ॥ पवयणस्स नमो गुणो तीजे ठाणेरे करो नाण अभ्यास, भगति करो सिद्धान्तनी जिन पावोरे तुम लिलविलास ॥ वी० ॥ ४ ॥ आयरियाणंनमो गुणो, चौथे बोलेरे पूजो गुरु ना पाय, नमो थेराण पञ्चमे गुणी सेवोरे धरमी मुनिराय ॥ वी० ॥ ५ ॥ पण्डित गुरुने पूछिए, छट्ठे गुणिएरे नमो उवझाय, नमो सव्व साहु सातमे वलि सेवोरे तपसी बहु जाण ॥ वी० ॥ ६ ॥ नमो नाणीणं आठमे, गुणे भणिएरे नवतत्व सिज्झाय, नमो दसण धारों गुणों, पाले नवमेरे समकित सुखदाय ॥ वी० ॥ ७ ॥ विनय संपन्न नमो इसो, पद दसमेरे गुणिए शुभ ध्यान, विनय करो गुणवन्तनी, इण रीते हो लहिए शिव, थान ॥ वी ॥ ८ ॥ इग्यार थानक गुणौ पडिकमणारे सांझ सवार चारित्तस्स नमो इसो, पद ध्यावो रे शिवमुख दातार ॥ वी० ॥ ९ ॥ गुणो बभयारीण नमो, आठ पोहोरी रे करो पोसह लील, बारमे ठाणई पालिए, शुभ भावेरे निरमल गुण शील ॥ वी० ॥ १० ॥ नमो किरियाधारी भणी' मन गुणीए नित तेरमे ठाण, सामायिक पीण लिजिए, दोष टालोरे बत्रीस प्रमाण ॥ वी० ॥ ११ ॥ तप अधिको करो चवदमे, नमो तपसीरे गुणिए मनरग, तपसी सेवा कीजिए, वलि रहिए तपसीने संग ॥ वी० ॥ १२ ॥

(ढाल थंभनपुरो) अतिथिदान बहु भावे दीजै, नमो गौयमाईण गुणिजै; पनरमो किरिया एह, प्रतिमानू भूषण पहिरावो; नमो जिणाण ए पद ध्यावो, सोलमे धर्म सनेह ॥ १३ ॥ आठपोहरी पोसो विधि करिए ध्यान नमो चारित्तस्स धरीये, एविसतरमठाण नवो नाण उच्चरंगे भणिये नमो नाणय, गुणणी गुणीये.आठारमे परिमान ॥ १४ ॥ नमो सुयस्स गुणो मन चगे, पुस्तक पूजा करो बहुभंगे, ए उगुणो समरीते नमो, तीरथराध्यान धरावो संघ, चतुर्विध भगति

करावो, वीस में शास्त्र विदीत ॥ १५ ॥ ढाल—दोयन्ए सुप्रते केरै, गुणिने गुणाणी मुविशेषै, च्यारसौ उपवास पूरी ज्यारे, समकित गुण शुद्ध वरीजै ॥ १ ॥ ए बीस स्थानक विधि जानी रे, सेवो मननु भट वाणी, विधि तुम्हे ए तप हीयरे, सो तीर्थंकर पद लहीये, भवे स्तव चारित्रवारी रे द्रव्य भावे विधि सागरी सेवे, जे नरने नारीरे ते मोक्षतणा अधिकारी. ॥ १७ ॥ इम वीसथानक तपतणी विधि शास्त्र ने अनुमार ए. जे वहे नरने नारी विधिसुं धन्य तसु अवतार ए रतनपुरवर संघ सुप्रकारजगतनाथ जिणेसरो, तसु चरणपंकज प्रणमि भावे कहे वसतो मुनिवरो ॥ १८ ॥

॥ तिइ ॥

---

(१)

अरिहन्तपद चैत्यवन्दन

जय जय श्री जिनराज मैं, शरणे आज आयो ।
चिन्तामणि वर कल्पतरु, महा पुण्ये पायो ॥ १ ॥
दर्शन ज्ञानावरण युग, अन्तराय मोह जान ।
घातिचतुष्क विनष्ट कर, पायो केवल ज्ञान ॥ २ ॥
सप्रति विंशति जिन नमो, प्रथम पदे जयकार ।
वाणीगुण पैंतीस वर चौंतिस अतिशय धार ॥ ३ ॥
देवपाल राजा हुये, पूजी जिनवर देव ।
होंगे श्रेणिक तीर्थ पति, महावीर पद सेव ॥ ४ ॥
सुख सागर भगवद् विभो, पुण्य पुञ्ज जगनाथ ।
'हरर्ष' विचक्षण को शरण देकर करें सनाथ ॥ ५ ॥

---

(२)

श्री सिद्ध पद चैत्यवन्दन

सिद्ध बुद्ध परमातमा, अलख अगोचर ईश।
अजर अमर अविनाशि अग, धारक गुणइकतीस॥ १॥
जम्बुघात की द्वीप है, पुष्कर अर्द्ध प्रमाण।
लख पैंत.लिस मनुजलोक सिद्ध शिला वरठाण॥ २॥
सहजाकृति निरुपाधि सुख, भोक्ता पूर्णानन्द।
निर्मल निसङ्गी प्रभू, नीरुज नित्यानन्द॥ ३॥
हस्तिपाल नृप पालिया, द्वितीय पद महन्त।
वर्ण गन्ध रस स्पर्शविन, गुण चतुष्क अनन्त॥ ४॥
सुख सिन्धो! भगवान पद, दीजे त्रिभुवनवास।
कहे विचक्षण विनय युत, मांगू यही त्रिकाल॥ ५॥

---

(३)

श्री प्रवचन पद चैत्यवन्दन

जय जय प्रवचन पद बड़ो, विंशतिपद तप मांहि।
तीर्थंकर जितने हुए, आराधे उच्छ्राहि॥ १॥
जिन प्रवचन शाश्वत नमो, नहीं आदि नहिं अन्त।
जीव अनन्ते तिर गये, और तिरेंगेअनन्त॥ २॥
देश सर्व विरती धरें, सङ्घ चतुर्विध रूप।
भरत प्रमुख आराध कर, नहीं दूर करे भवकूप॥ ३॥
सुख का सागर है यही, मोक्ष बीज यह सार।
स्वर्ण शरण 'भव भव' चहे, सुवि चक्षण हितकार॥ ४॥

---

(४)

श्री आचार्य पद चैत्यवन्दन

चौथे पद सूरीश हैं, शासन थंभ समान।
जिनवर सूर्य अभाव में सूरि प्रदीप सुजान ॥ १ ॥
दर्शन ज्ञान चारित्र तप, - वीर्य सुपञ्चाचार।
इनके पालक मुनिवरा, आचारज गणधार ॥ २ ॥
छत्तीस छत्तीस के, छिन्नु बारशत भेद।
द्विसहस्र चउ युगवरा, घरे हरे भवखेद ॥ ३ ॥
युगवर श्री सुख सिन्धु हैं, - सूरीश्वर सम्राट।
इनसे शोभित नित रहे, वीर प्रभु का पाट ॥ ४ ॥
पुरुषोत्तम नृप सूरि पद, घरे हरे भवताप।
स्वर्ण विचक्षण के सदा, सूरीश्वर मां बाप ॥ ५ ॥

---

(५)

श्री स्थविरपद चैत्यवंदन

ज्ञानवृद्ध पर्यायवृद्ध, वयोवृद्ध गुणराग।
लौकिक लोकोत्तर थविर, कहे दसविध ठाणांग ॥ १ ॥
तीर्थङ्कर गणधर सभी, नवदीक्षित मुनि होय।
सौंपे स्थविर मुनीन्द्र को, देते शिक्षा दोय ॥ २ ॥
शिथिल बने मुनिमार्ग से, दृढ करेदे उपदेश।
पंचमपद आराधना, प्रेम से करो हमेश ॥ ३ ॥
पद्मोत्तर नरपति बने, सुखसागर भगवान।
सुवरण ज्योति प्रकट हो, मिले 'विचक्षण' ज्ञान ॥ ४ ॥

---

(६)

श्री उपाध्यायपद चैत्यवन्दन

पाठकपद छट्ठे नमूं, ज्ञानाकर गुणवन्त।
द्वादशाङ्गि गणिपिटक धर, गुण पचवीस महन्त ॥ १ ॥
अंग इग्यार द्वादशउपांग, छेद पयना मूल।
पैंतालिस आगम धरे, जिन शासन अनुकूल ॥ २ ॥
श्रमणसंघ को वाचना, दें अप्रमत्त हमेश।
पाठकपद से जिन बने, महेन्द्रपाल नरेश ॥ ३ ॥
सुखसागर सुवर्णधर, उपाध्याय भगवान।
ज्ञान यत्न से मूर्ख भी, 'विचक्षण' हो विद्वान ॥ ४ ॥

(७)

श्री मुनिपद चैत्यवन्दन

सिद्धिगमन की साधना, जो करते दिनरात।
सप्तमपद मे नित नमूं, त्यागमूर्ति साक्षात ॥ १ ॥
सत्ताईस गुण धारते, तप जप श्रुत अभ्यास।
चाह दाह से रहित हो, करते आत्म विकास ॥ २ ॥
आराधक उपशमधरा, क्रोधी विराधक जान।
उपशम ही श्रमणत्व है, कल्पसूत्र प्रमाण ॥ ३ ॥
वह सुख अनुभव नहि करे, चक्रवत्ति सुर इन्द।
वीतराग मुनि अनुभवे, जो अनुपम आनन्द ॥ ४ ॥
वीरभद्र लिया मुक्तिपद, सुवर्ण मुनिपद सेव।
ज्ञान यत्न युत साधुपद, इष्ट 'विचक्षण' देव ॥ ५ ॥

(८)

श्री ज्ञानपद चैत्यवन्दन

सम्यग्ज्ञान सदा नमो, अष्टमपद सुविकाश ।
भवभ्रमण अज्ञानमूल, करे सज्ज्ञान विनाश ॥ १ ॥
मतिश्रुतावधि मनपर्यय, केवल ज्ञान प्रधान ।
अट्ठाइस वीस छ युगल, इक है क्रमिक विधान ॥ २ ॥
आतमज्ञानी श्वास में करे कर्म चकचूर ।
अज्ञानी नहिं कर सके, क्रोड़ वर्ष भी दूर ॥ ३ ॥
भ्रमत फिरे अज्ञानि जन, ज्यों घाणी का बैल ।
छुटकारा तब ही मिले, नाश करे यह मैल ॥ ४ ॥
सुखदायक जिनपद लिया, जयन्तनृप जयकार ।
सुवर्णज्ञान सुयत्न से, विचक्षण हो निस्तार ॥ ५ ॥

---

(९)

श्री दर्शनपद चैत्यवन्दन

उपशम क्षायिक मिश्र है, समकित तीन प्रकार ।
पांच एक व असंख्य है, नवमे पद जयकार ॥ १ ॥
सम संवेग विराग पुनि, करुणा अस्तिक्य पंच ।
समकित लक्षण धारकर, दूर करो भवमंच ॥ २ ॥
समकित बिन चारित्र नहीं, है नहिं तत्वप्रतीति ।
तत्वज्ञान बिन नहिं मिटे, जन्म मरण की भीति ॥ ३ ॥
अंक बिना बिन्दू सभी, कहलाते हैं शून्य ।
बिन समकित तप जप क्रिया, जान निर्जरा शून्य ॥ ४ ॥

देह भिन्न आतम लखे, म्यान मध्य तलवार।
हरिविक्रम जिनवर बने, शिवसुख पाया सार ॥ ५ ॥
मिला सुवर्ण समय करो, ज्ञान सुयत्न अतीव।
मिथ्याग्रन्थि अनादि की, छेद 'विचक्षण' जीव ॥ ६ ॥

---

(१०)

श्री विनयपद चैत्यवन्दन

विनयमूल जिनमत है, उत्तराध्ययन सिद्धांत।
प्रथमाध्ययन मनन करो, पद दसवें एकान्त ॥ १ ॥
सर्व गुणो मे प्रथम गुण, विनय कहा भगवान।
विनय बिना समकित नहो, न फले चारित ज्ञान ॥ २ ॥
अर्हन् सिद्ध सूरि थविर, कुलगण संघ महन्त।
धन्ना सदृश विनय कर, शीघ्र करो भव अन्त ॥ ३ ॥
सुख का सागर विनय है, विनय स्वर्ण रत्न जान।
ज्ञान यत्न सह विनय गुण, चहे 'विचक्षण' दान ॥ ४ ॥

---

(११)

श्री चारित्रपद चैत्यवन्दन

...ज... शिवपद सुख दातार।
...भव से अधिक, रहे नहीं संसार ॥ १ ॥
...की, तृणवत् करके त्याग।
... ... चक्रवृत्ति महाभाग ॥ २ ॥

अन्तर्मुहूर्त्त सावना, शुद्धभाव से होय।
अनन्तकाल की कर्मरज, रिक्त करे मलधोय ॥ ३ ॥
चारित विन नहीं मोक्ष है, रखड़े काल अनन्त।
पापि अधर्मी दुष्ट भी, शिव गये वन मुनि सन्त ॥ ४ ॥
वरुणदेवनृप पालिया, सुख स्वरूप शिवराज।
स्वर्ण विचक्षण को मिले, भव भव चरित जहाज ॥ ५ ॥

---

(१२)

श्री ब्रह्मचर्यपद चैत्यवन्दन

नमो बभवय धारका, द्वादशपह श्रीकार।
करण योग देवनर, भेद अठारह धार ॥ १ ॥
सभी व्रतों में व्रत वड़ो, ब्रह्मचर्यव्रत सार।
सुर सुरेन्द्र भी नमत है, ब्रह्मचारि नरनार ॥ २ ॥
विषय विजयी स्थूलि भद्र, किया सुदुष्कर काम।
चौराशी चौवीशि तक, विजयवन्त जसु नाम ॥ ३ ॥
कोशा वेश्या भवन मे, ध्यान धरें चउमास।
द्वादशवर्षी स्नेह तज, करी श्राविका खास ॥ ४ ॥
विजयसेठ विजयासती, अटल ब्रह्मप्रतिमान।
दान सहस्र चौराशि मुनि, फल कहे श्री भगवान ॥ ५ ॥
धर न सके सुरराज भी, इक दिन भी ब्रह्मचर्य।
शीलव्रतधारी नमो, श्रावक औ मुनिवर्य ॥ ६ ॥
चन्द्रवर्म सुखपद लियो, ब्रह्मव्रत सुवर्णखान।
विचक्षण हार्दिक प्रार्थना, दो ब्रह्मव्रत दान ॥ ७ ॥

(१३)

श्री क्रियापद चैत्यवन्दन

क्रियाप्रवर्त्तन रहित घन, प्रतिदिन नमूं मुनीश ।
कर्मबन्ध कारण क्रिया, कहि प्रभु ने पचवीस ॥ १ ॥
दान शील तप भाव वर, आवश्यक प्रणिधान ।
ये सब कर अक्रिय बनो, लहो चवदम गुणथान ॥ २ ॥
तेरमपद आराध कर, हरिवाहन नरनाथ ।
सुखसागर भगवद्द बने, तीन लोक वरनाथ ॥ ३ ॥
अशुभ क्रिया से जीव सब, रखड़े काल अनन्त ।
अब सुवर्ण शुभ यत्न कर विचक्षण हो भव अन्त ॥ ३ ॥

---

(१४)

श्री तपपद चैत्यवन्दन

चौदमपद आराधिये, तप कर विविध प्रकार ।
कर्मवल्लि छेदन करे, सुतीक्षण तप तलवार ॥ १ ॥
लब्धी आमो सहि प्रमुख, प्रकटे तप सुप्रभाव ।
कल्पवृक्ष चिन्तामणी, है तप शिवसुखदाव ॥ २ ॥
नन्दन मुनि भव वीर प्रभु, तपोमूर्त्ति साक्षात ।
लग ग्यार वैंताल सहस, मासखमण सय सात ॥ ३ ॥
नन्दिषेण मेतार्यमुनि, सुकन्ना शालिभद्र ।
दृढ़प्रहारि खंधक प्रमुख, तप कर तिरे मुनीन्द्र ॥ ४ ॥
कनक केतु नृप जिन बने, सुखसागर तपधार ।
स्वर्णोपम तप आचरण, चहे 'विचक्षण' सार ॥ ५ ॥

---

(१५)

श्री गौतमपद चैत्यवन्दन

वीर प्रभु के प्रथम शिष्य, गणधर गौतम स्वाम ।
सर्व लब्धि सम्पन्न को, पनरम पदे प्रणाम ॥ १ ॥
पृथ्वि मात वसुभूति सुत, चौदह विद्या निधान ।
वीरचरण कज मधुप बन, पाया केवलज्ञान ॥ २ ॥
आयुष बाणू वरसका, कंचन वरण शरीर ।
मोक्ष गुणावा में गये, पाया भव का तीर ॥ ३ ॥
तीर्थंकर चौबीस के, सब गणधर भगवन्त ।
चौदह सौ बावन्न को, सुरनर इन्द्र नमन्त ॥ ४ ॥
त्रिपदी प्रभु मुख सुन रचे, द्वादशाङ्गि विस्तार ।
गणधर पद से जिन बने, हरिवाहन जयकार ॥ ५ ॥
सुखसागर गौतम सुगुरु, स्वर्णलब्धि भण्डार ।
देवें क्षायिक लब्धिनिधि, लहे विचक्षण पार ॥ ६ ॥

---

(१६)

श्री जिनपद चैत्यवन्दन

जय जय सीमन्धर नमूं, युगमन्धर प्रणमूं ।
बाहु सुबाहु श्री सुजात, स्वयम्प्रभ नाथ नमूं ॥ १ ॥
ऋषभानन अनन्तवीर्य, सूरप्रभ श्री विशाल ।
वज्रन्धर चन्द्रानन, चन्द्रबाहु गुणमाल ॥ २ ॥
भजङ्ग ईश्वर नमिप्रभ, वीरसेन महाभद्र ;
देवयशाप्रभु [illegible]

चौराशीलखपूर्व आयु, धनु शतपंच शरीर ।
विचरं महाविदेह मे, धन्य धन्य तकदीर ॥
सुखसिन्धो ! तव स्वर्ण पद, स्पर्शन करूं हमेश ।
ज्ञानपुञ्ज प्रवचन सुनूं, दो वरदान जिनेश ॥
जीमूतवाहन जिन बने, सोलम पद जिन सेव ।
यत्न से भव भीति हरो, विचक्षण की हे देव ॥ १

(१७)

श्री संयम चैत्यवन्दन

सतरमपद संयम नमो, सतरह विध जयकार ।
व्रत पट समिति पंच गुप्ति त्रिक योगत्रय धार ॥ १ ॥
नामान्तर थिर श्रव नव, अजीव प्रेक्षा भेद ।
उपेक्षा अरु प्रभार्जना, धर त्रिक योग अखेद ॥ २ ॥
संयम मुक्ति सुमार्ग है, मुक्ति विन, कहा सुख ।
बिना मुक्ति मिटता नहीं, जन्म मरण का दुःख ॥ ३ ॥
संयम विन भी मुक्ति कहे, वे लोपें शिवपन्थ ।
तीर्थङ्कर चक्री ग्रहे, क्यों फिर सयमग्रन्थ ॥ ४ ॥
सुखसिन्धु सुवर्ण संयम, ग्रहे पुरन्दर भूप ।
ज्ञान यत्न पूर्वक बने 'विचक्षण' सिद्ध आतम रूप ॥ ५ ॥

---

(१८)

श्री अभिनव श्रुत पद चैत्यवन्दन

अष्टादश पद मे धरो, अपूर्वश्रुत अभिधान ।
भवभ्रमण जड़ काट दो, यह अनादि अज्ञान ॥ १ ॥

नव नव आगम नित सुनो, वाचन करो हमेश।
आगमज्ञान ही देत है, आतम ज्ञान विशेष ॥ २ ॥
श्रुत स्वाध्याय से कटत है, अष्ट कर्म का फन्द।
आगम आराधक बने, जिनपति सागरचन्द ॥ ३ ॥
सुख का सागर ज्ञान है, रत्नसिद्धिरस ज्ञान।
यत्नशील 'विचक्षण' बने, आगमज्ञान निधान ॥ ४ ॥

---

(१९)

श्री श्रुतज्ञान पद चैत्यवन्दन

श्री श्रुतज्ञान सदा नमो, पद उन्नीसवें सार।
तीर्थङ्कर गणधर कथित, द्वादशाङ्गि विस्तार ॥ १ ॥
मति अवधि मन:पर्यवा, केवल ज्ञान प्रधान।
ये चारों ही मौन हैं, उपकारक श्रुत ज्ञान ॥ २ ॥
श्रुत ज्ञानी केवलिसमा, है प्रवचन सुप्रदीप।
चवदह बीस श्रुत भेद धर, गुणमुक्ताफल सीप ॥ ३ ॥
मर्यादयक श्रुत करे, पर भव भी रहे साथ।
सुख सागर श्रुत से बने, रत्नचूड़ जगनाथ ॥ ४ ॥
तीर्थङ्कर गणधर नहीं, नहीं पूर्वधर आज।
मु

(२०)

श्री तीर्थपद चैत्यवन्दन

ॐ अर्हं जय तीर्थपद, श्रमण सुश्रावक रूप।
है अनादि अनन्त यह, कहते त्रिभुवन भूप ॥ १
अनन्त तीर्थङ्कर बने, और बनेंगे अनन्त।
होते ही सर्वज्ञ सब, स्थपे तीर्थ महन्त ॥ २
देश विरति द्वादशव्रती, धारे गुण इकवीस।
मुनि सतरह सयम धरा मुतीर्थ गुण अड़तीस ॥ ३
खरतर सुख सिंधु भगवन, तीन लोक हरिपूज्य।
आनंद विभु कवींद्र नत, प्रवर्जिनी श्री पुण्य ॥ ४
वीसम पद से जिन बने, मेरुप्रभ पुण्यवान।
निर्मल बने सुवर्ण सम, ज्ञान सुपद्म महान ॥ ५
दोय सहस सतरह स्तवे, अनुपम विंशति स्थान।
मांगे हे विज्ञान धन, सुविचेक्षण तपवान ॥ ६

तर्ज—(प्रभु पारस अर्ज सुनो मेरी)

भवि करलो वीसस्थानक तप को। भवि करलो ॥ टेर
तीर्थंकर अनन्ते हो गये।
किया सभी ने महा तप को ॥ भवि० ॥ १ ॥
जितने भी अब होंगे तीरथपति।
वे भी करेंगे इस तप को ॥ भवि० ॥ २ ॥
वीसों पद मे एक एक पद भी।
देवे मुक्ति आराधक को ॥ भवि० ॥ ३ ॥
यह तप चार गति चकचूरे।
तोडे चौरासी लख को ॥ भवि० ॥ ४ ॥

प्रतिक्रमण , देववन्दन करके ।
धारो ब्रह्मचर्य व्रत को ॥ भवि० ॥ ५ ॥
विविध प्रकार से प्रभु भक्ति कर।
सफल करो निज जीवन को ॥ भवि० ॥ ६ ॥
काउसग्ग क्षमासमण प्रदक्षिणा ।
पौषध करके तरो भव को ॥ भवि० ॥ ७ ॥
सुखसागर भगवान बनावे ।
यह तप तारक त्रिभुवन को ॥ भवि० ॥ ८ ॥
प्रभु को सुवरण शासन पायो ।
यत्न से टालो भव दुख को ॥ भवि० ॥ ९ ॥
अनुपम बीसस्थानक तप मेवा ।
भव भव मिले "विचक्षण" को ॥ भवि० ॥ १० ॥

(तर्ज—अर्ज सुनो गुरुदेव)

तप वीसस्थानक जयकार, आराधो पूरण प्रेम धरी (भविजन हर्ष धरी)
करलो सफल अवतार, तप जप संयम शुभ भाव भरी ॥ टेर ॥
तीजे भव में अरिहन्त सबही, इस तप को आराधे ।
तीर्थंकर शुभ नाम कर्म को, यहि महाताय बांधे ॥ तप० ॥ १ ॥
पद पहले अरिहंत प्रभु है, चौतीस अतिशय धारी ।
बारह गुण शोभे भगवन्ता, विश्व सकल उपकारी ॥ तप० ॥ २ ॥
सिद्ध आठ इकतीस गुणधारी, प्रवचन गुण सत्तावीसा ।
सूरीश्वर छत्तीस छत्तीसी, स्थविर दश गुण ईशा ॥ तप० ॥ ३ ॥
पाठक गुण पचवीस अलंकृत, सत्ताईस मुनिराजा ।
ज्ञान इकावन समकित सडसठ, बावन विनय गुणराजा ॥ तप० ॥ ४ ॥
चारित्र सित्तर ब्रह्मचर्य गुण, अष्टादश स्वीकारो ।

क्रिया पचीस रहित हो करके, द्वादश विध तप धरो ।। तप० ।। ५ ।।
गौतम पद बारह विध वन्दो, विचरत बीस जिनन्दा ।
संयम सत्तरे बावन्न अभिनव, धारो ज्ञान दिनन्दा ।। तप० ।। ६ ।।
चौदह वीस भेद श्रुत सीखो, अज्ञान अनादि निवारो ।
पूजो प्रणमो तीर्थ पद को, नित अड़तीस विचारो ।। तप० ।। ७ ।।
उभय काल आवश्यक, पाप कर्म सब हरिये ।
प्रात-शाम मध्यान्ह समय में, देववन्दन विधि करिये ।। तप० ।। ८ ।।
एकासन नीवी आंबिल, उपवास छट्ठ से सेवो ।
जघन्य मध्यम उत्कृष्टों तप, कर सुखसागर लेवो ।। तप० ।। ९ ।।
एक एक पद का आराधन भी, त्रिभुवन पति बनावे ।
सुवर्ण अवसर मिला यतन से, "विचक्षण" ज्योति जगावे ।। १० ।।

---

(१७)

वीसस्थानक तप जयवन्तम् ।। १ ।।
आराधित अगणित भगवन्तम् ।। २ ।।
ज्ञाता सूत्रे भाषित तत्त्वम् ।। ३ ।।
रक्षति सुरगण संघ महन्तम् ।। ४ ।।

वीस स्थानक देव वंदन विधि ।

'इच्छामि० इच्छा० चैत्यवंदन करु ? इच्छं ! कहकर वीश स्थानक का चैत्यवंदन और नमोत्थुणं० कहे। पश्चात खमासमण देकर इरियावहियं० तस्सउत्तरी० अन्नत्थ० कहकर एक लोगस्स का कायोत्सर्ग करके प्रकट लोगस्स कहे। पीछे 'इच्छामि० इच्छा० चैत्यवंदन करुं ? इच्छं, कहकर चैत्यवंदन करे इसके बाद जं किंचि० नमोत्थुणं० कहकर खड़े हो जाय। पश्चात् अरिहंतचेइआणं। अन्नत्थ० कहकर एकनवकार का कयोत्सर्ग करना। पीछे 'नमो अरिहंताणं, कहते हुए कायोत्सर्ग पूराकर 'नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यः कहकर वीसस्थानक की पहली स्तुति कहे। इसके बाद लोगस्स० सव्वलोए० अन्नत्थ० कहकर एक नवकार का कायोत्सर्ग करके दूसरी स्तुति कहे। पीछे पुक्खरवरदीवड्ढे० सुअस्स भगवओ० अन्नत्थ० कहकर एक नवकार का कायोत्सर्ग करके तीसरी स्तुति कहे। पश्चात् सिद्धाणं वेयावच्चगराणं० अन्नत्थ० कहकर एक नवकार का कायोत्सर्ग करके नमोऽर्हत्० कहकर चौथी स्तुति कहे। अब नीचे बैठकर 'नमोऽत्थुणं०; कहे, अनन्तर खड़े होकर फिर अरिहंतचेईआणं० अन्नत्थ० एक नवकार का कयोत्सर्ग पूरा नमोऽर्हत्० कहकर पहली स्तुति कहे। पश्चात् लोगस्स० सव्वलोए०अन्नत्थ० कहकर एक नवकार का कयोत्सर्ग पूरा कर दूसरी स्तुति कहे। पीछे पुक्खरवरदीवड्ढे० सुअस्स भगवओ अन्नत्थ० एक नवकार का कायोत्सर्ग करके तीसरी स्तुति कहे पश्चात् सिद्धाणं बुद्धाणं वेयावच्चगराणं० अन्नत्थ० एक नवकार का कायोत्सर्ग करके नमोऽर्हत्०कहकर चौथी स्तुति कहे। अब नीचे बैठकर नमोऽत्थुणं० जावंतिचेइआइं० जावंत केवि साहू० नमोऽर्हत्० उवसग्गहरं० का वीसस्थानक का स्तवन कहकर जयवीयराय० वह पश्चात् नमोऽत्थुणं कहे ॥ इति ॥

बीसस्थानकके उजमणे की वस्तु।

देवोपकरण

देरासर, कटोरी, रकेबी, जिनबिम्ब, स्थापना, आरती, मङ्गल दीप, अंगलुहने, कलश, केशर की पुड़ी, नौवकारवाली, अष्टमङ्गलिक, चन्दवा, पूठीया, तोरण, छत्र, मोरपीछी, चंदन व मुट्ठीया, बीस स्थानकजी के गट्टे, सिंहासन, कचोला, घंटे तमेड़ा, मुख कोस, कामली, धोती, उत्तरासण, तिलक मुकुट खसकूंची, धूपदानी बरास की पुडियां, चांदी के वर्क, केसर व पुड़िया, सोने का वर्क चवर, चंदन घसने के चकले, हंडा, ध्वजाए अगरवत्ती की पुडिया।

ज्ञानोपकरण

गुणने की टीप, पट्टी, कलम, दवात, पुस्तक, पूठा, ठवणी, रूमाल, विटांगणा, डोरा, पुस्तक रखने का बकस, वासकुपा, कागज हिङ्गलू की पुडिआं, पेंसिल कमली, रून।

चारित्रोपकरण

कम्बल, चोलपट्टे, ओघ, ओघाडाडि, चद्दर, ऑलियां, डोड़े तरपणी, पातरा, जोड, पूंजणी की डंडीयें, आसन, संथारिये, पागरनी, मुहपत्ती; पूंजणी, दंडासन, चवला चरवला की डांडी,

नोट—उपरोक्त सर्व वस्तुए बीस बीस लेना।

क्या आपको मालूम है ?

अजमेर दादाबाड़ी में—

"भवन निर्माण" योजना प्रारम्भ की गई है।

भवन के अङ्ग

१—छात्रावास
२—बालमंदिर
३—पुस्तकालय
४—स्वाध्याय गृह
५—यात्री विश्रामगृह

भवन निर्माण अर्थात्—साहित्य सेवा समाजोपयोगी कार्य, अतिथि सत्कार, ज्ञान प्रसार एवम् छात्रवृत्ति द्वारा स्वधर्मी बंधु सेवा।

अजमेर तीर्थ

में

दादा—मेला

☆

युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी म० सा० ने अजमेर में अपने जीवन के अन्तिम क्षण व्यतीत किये थे, उसी स्थान पर प्रति वर्ष आषाढ़ शुक्ला १० व ११ को दादा मेला लगता है। इस अवसर पर धार्मिक, सांस्कृतिक, खेलकूद आदि समयानुकूल सुन्दर व मनोरंजक कार्यक्रम रखे जाते हैं। अतः गुरुभक्तों से निवेदन है कि वार्षिक मेले पर पधार कर गुरुदेव को अपनी श्रद्धाञ्जली अर्पित कर कर्तव्य कृत करें।

मांगीलाल पारख

प्रधान

श्री जिनदत्तसूरि मण्डल, दादावाड़ी

अजमेर